ज्योतिषिका

अभूतपूर्व विराट् आयोजन

आचार्यश्री रजनीश की आशीर्वाद-प्राप्त संस्था जीवन जागृति केन्द्र
के तत्वावधान में

पर्यूषण - पर्व

के उपलक्ष्य में पंच महाव्रत पर वृहद् व्याख्यान-माला का संयोजन

उद्बोधक:

आचार्यश्री रजनीश

दिनांक	विषय
१ सितंबर १९७०	अहिंसा
२ सितंबर १९७०	अस्तेय
३ सितंबर १९७०	अपरिग्रह
४ सितंबर १९७०	अकाम
५ सितंबर १९७०	अप्रमाद

एवं

जीवन जागृति केन्द्र की स्थापना के दस वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में

७ सितंबर १९७० को आचार्यश्री का प्रेरक प्रवचन

समय : प्रति दिन : ८॥ बजे प्रातःकाल

स्थान : षण्मुखानंद हाल, किंग्ज सर्किल (शिव), बम्बई

विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिए :

जीवन जागृति केन्द्र

एम्पायर बिल्डिंग, पहला माला, कमरा नं. ५३, डॉ. डी. एन. रोड, फोर्ट,
बम्बई–१ फोन : २६४५३०

ओशो टाइम्स

आचार्यश्री रजनीश की अमृतवाणी का
त्रैमासिक संकलन

•

सितम्बर १९७०

•

अंक : १८ वां

•

मान्यक सम्पादक :
महीपाल
प्रो. अरविन्द

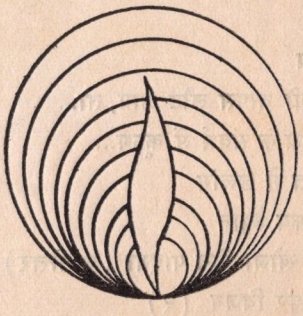

आवरण–सज्जा :
रंगरेखा स्टुडियो

•

एक प्रति : रु. १–२५
वार्षिक : रु. ५–००

प्रकाशन स्थल :
जीवन जागृति केन्द्र
एम्पायर बिल्डिंग (वी. टी. स्टेशन के सामने), पहला मंजला, रूम नं. ५३,
डॉ. दादाभाई नौरोजी रोड, बम्बई–१
फोन : २६४५३०

•

मुद्रण स्थल :
स्टेट पीपल प्रेस,
फोर्ट, बम्बई–१

•

अनुक्रम

विषय	संकलनकर्ता	पृष्ठ
• आदमी वापस लौट आय, तो...	महीपाल	५
• भविष्य के संदर्भ में कृष्ण...	किशोरीरमण टण्डन	८
• अज्ञात में छलांग	क्रियानन्द	३१
• निष्क्रिय ध्यान	महायोग लक्ष्मी	४९
• जिन खोजा तिन पाइयां (प्रश्नोत्तर)	ईश्वरभाई	६३
• मृत्यु पर विजय (२)	पुष्करभाई गोकाणी	८०
• आगामी देशव्यापी कार्यक्रम		१०३

'समुन्द समाना बुन्द में....'

'नवनीत' से साभार

आदमी वापस लौट आय, तो....

वे करुणा से इतने ओतप्रोत हैं कि
उनका एक एक शब्द सम्मोहन है और संजीवन भी;
वे भावना से इतने भरे हुए हैं कि
उनका मौन ही अभिव्यक्ति है और स्पन्दन भी;
वे प्रेम में इतने सराबोर हैं कि
उनका स्पर्श ही मुक्ति है और बन्धन भी !
वे अनजानी और अज्ञात शक्ति से भरे हैं,
फिर भी हैं—
अत्यंत शांत, निर्द्वन्द्व, निष्कम्प, स्थितप्रज्ञ !
वे संसार में हैं,
परन्तु उनके चित्त में संसार नहीं है;
वे स्वप्न में थे तो उन्होंने देखा---
वे जगती के अत्यंत क्षुद्र परमाणु हैं
और ज्योंही स्वप्न टूटा, वे जागे, तो जाना कि
वे ही अनन्त हैं

और सारी जगती उन्हीं में क्षुद्र परमाणु स्वरूप रह गई है।
एक दिन अनायास ही किसी ने उनसे पूछ लिया—
आप कौन हैं?.... (वे चौंके नहीं)
उन्होंने कहा कि मैं भी यही जानने की फिक्र में हूँ।
और देखते ही देखते वे नाचने लगे—
एक अनिर्वचनीय ऊर्जा के स्पन्दन मात्र रह गये।
उनके होठों पर कबीर उभर आये—
'समुन्द समाना बुन्द में सो कत हेरि जाइ'
अनन्त ऊर्जा का सागर उनमें गिर पड़ा है
वे कहते चले गये—
भागो नहीं,
रुको—ठहरो, देखो और जानो;
हर बीज सम्भावनाओं से भरा हुआ है।
सुनते नहीं,
यहाँ की हर ध्वनि क्या तुम्हारी ही प्रतिध्वनि नहीं है?
देखते नहीं,
इन सब चेहरों में तुम्हारा ही चेहरा
प्रतिभासित और प्रतिबिंबित नहीं है?
बीज बोकर तो देखो—
धरती तुम्हें फूलों से भर देगी!
प्रभु की ओर एक कदम उठाकर तो देखो---
अनन्त और असीम तुम्हारी बांहों में सिमट आयेंगे!
यह धरती
अनन्त अनन्त जन्मों से अपने वृक्षों के

हजार हजार हाथ निरन्तर ऊपर उठाये हुए है
उस ऊर्जा को पाने के लिए....
और दुःख है कि इस धरती का आदमी गलत हो गया है !
पर निराशा का कोई कारण नहीं है।
इस भूमि के पास अभी तक कुछ
संरक्षित सम्पत्तियाँ हैं !
इस जमीन पर कुछ ऐसे लोग चले हैं
जिनकी किरणें, जिनकी ज्योति
आज भी हवाओं में फैली हैं;
जिनकी आकांक्षायें आज भी पत्तों-पत्तों पर
खुदी हुई हैं !
आदमी गलत हो गया है,
लेकिन अभी जमीन के कणों को बुद्ध के चरणों का स्मरण है।
आदमी गलत हो गया है,
लेकिन वृक्ष पहचानते हैं कि कभी महावीर उनके नीचे खड़े थे।
आकाश अभी भी आशा बांधे है---
आदमी वापस लौट आय, तो बाकी सारा
इन्तज़ाम है !

-महीपाल

★

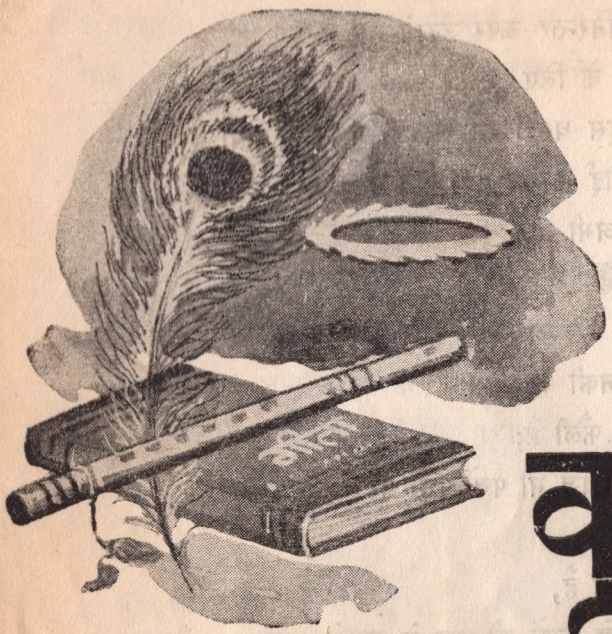

बम्बई में हुई एक
सत्संग-वार्ता :

कृष्ण

कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत अनूठा है। अनूठेपन की पहली बात तो यह है कि कृष्ण हुए तो अतीत में, लेकिन हुए भविष्य में। मनुष्य अभी भी इस योग्य नहीं हो पाया कि कृष्ण का समसामयिक बन सके। अभी भी कृष्ण मनुष्य की समझ के बाहर हैं। भविष्य में ही यह सम्भव हो पायेगा कि कृष्ण को हम समझ सकें। इसके कुछ कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि कृष्ण अकेले ही ऐसे व्यक्ति हैं जो धर्म की तरल गहराइयों और ऊंचाइयों पर होकर भी गम्भीर नहीं हैं, उदास नहीं हैं, रोते हुए नहीं हैं। साधारणतः सन्त का लक्षण ही रोता हुआ होना है—जिन्दगी से उदास, हारा हुआ, भागा हुआ। कृष्ण ही अकेले नाचते हुए व्यक्ति हैं—हंसते हुए, गीत गाते हुए। अतीत का सारा धर्म दुःखवादी था। कृष्ण को छोड़िए। अतीत का सारा धर्म उदास, आंसुओं से भरा हुआ है। हंसता हुआ धर्म, जीवन को समग्र रूप से स्वीकार करने वाला धर्म, अभी पैदा होने को है। निश्चित ही पुराना धर्म मर गया है और पुराना ईश्वर भी जिसे हम अब तक ईश्वर समझते थे। जो हमारी धारणा थी वह भी मर गई है। जीसस के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह कभी हंसे नहीं। शायद जीसस

हमारा वर्तमान युग
उस भविष्य के करीब पहुंच रहा है
जहां कृष्ण की प्रतिमा निखरती
जायगी और एक हंसता हुआ धर्म
एक नाचता हुआ धर्म
जल्दी निर्मित होगा

भविष्य के संदर्भ में पुनर्मूल्यांकन

संकलन : **किशोरीरमण टण्डन**

का यह उदास व्यक्तित्व और सूली पर लटका हुआ उनका शरीर ही हम दुखी चित्त लोगों को बहुत आकर्षण का कारण बन गया है। महावीर या बुद्ध बहुत गहरे अर्थों में इस जीवन के विरोधी हैं— कोई और जीवन है परलोक में, कोई मोक्ष है उसके पक्षपाती हैं। समस्त धर्मों ने दो हिस्से कर रखे हैं जीवन के—एक वह जो स्वीकार योग्य है, एक वह जो इन्कार के योग्य है। कृष्ण अकेले ही समग्र जीवन को पूरा ही स्वीकार किये हुए हैं। जीवन की समग्रता की स्वीकृति उनके व्यक्तित्व में फलित हुई है। इसलिए इस देश में और सभी अवतारों को आंशिक अवतार कहा है; कृष्ण को पूर्ण अवतार कहा है। राम भी अंश ही हैं परमात्मा के। लेकिन कृष्ण पूरे ही परमात्मा हैं। और यह कहने का, यह सोचने का, ऐसा समझने का कारण है। और वह कारण यह है कि कृष्ण ने सभी कुछ आत्मसात कर लिया है।

अल्बर्ट श्वाइत्जर ने भारतीय धर्म की आलोचना में एक बड़ी कीमत की बात कही है और वह यह है कि भारत का धर्म जीवन निषेधक और 'लाइफ निगेटिव' है। यह बात बहुत दूर तक सच है, यदि कृष्ण को विचार में न लिया जाय। यदि कृष्ण

को विचार में ले लिया जाय, तो यह बात एक दम ही गलत हो जाती है। और श्वाइत्जर यदि कृष्ण को समझते तो ऐसी बात न कहते। लेकिन कृष्ण की कोई व्यापक छाया अभी हमारे विश्व पर नहीं पड़ी है। यह अकेले दुःख के एक महासागर में नाचते हुए एक छोटे से वीर हैं। या ऐसा समझिये—उदास और निषेध और दमन और निंदा के बड़े मरुस्थल में एक बहुत छोटे से नाचते हुए उद्यान हैं। वह हमारे पूरे जीवन की धारा को नहीं प्रभावित कर पाये। हम ही इस योग्य न थे, हम उन्हें आत्मसात न कर पाये। मनुष्य का मन अबतक द्वैत पर सोचता रहा, द्वन्द्व करके सोचता रहा कि शरीर को इन्कार करना है, आत्मा को स्वीकार करना है। आत्मा और शरीर को लड़ा देना है। परलोक को स्वीकार कर लेना है, इहलोक को इन्कार कर देना है। और इहलोक और परलोक को लड़ा देना है। स्वभावतः यदि हम शरीर को इन्कार कर देंगे तो जीवन उदास हो जाएगा। यदि जीवन के सारे वस्त्र और सारा स्वास्थ्य, जीवन का सारा संगीत और सारी संवेदनाएं शरीर से आ रही हैं, तो शरीर को जो धर्म इन्कार कर देगा तो वह पीत वर्ण हो जाएगा। रक्त शून्य हो जाएगा। लाली खो देगा। वह पीले पत्ते की तरह सूखा हुआ धर्म होगा। उस धर्म की मान्यता जिनके मन में बैठी थी वह भी पीले पत्ते की तरह गिरने की तैयारी में संलग्न हैं। मरने के लिए तैयार हैं। कृष्ण अकेले हैं जो शरीर को उसकी समग्रता में स्वीकार कर लेते हैं—उसकी 'टोटलटी' में। यह एक आयाम में नहीं, सभी आयाम में सच है। शायद कृष्ण को छोड़कर पूरे मनुष्यता के इतिहास में जरस्थस्त्रु एक दूसरा आदमी है जिसके बाबत यह कहा जाता है कि वह जन्म लेते ही हंसा है। सभी बच्चे रोते हैं। एक बच्चा सिर्फ मनुष्यता के इतिहास में जन्म लेकर हंसा है। यह सूचक है इस बात का कि हंसती हुई मनुष्यता पैदा नहीं हो पायी और कृष्ण को हंसती हुई मनुष्यता ही स्वीकार हो सकी, इसलिए कृष्ण का बहुत भविष्य है। फ्रायड से पूर्व धर्म की जो दुनिया थी वह फ्रायड पश्चात् नहीं हो सकती थी। एक बड़ी क्रान्ति घटित हो गई है और बड़ी दरार पड़ गई है मनुष्य की चेतना में। हम जहां थे फ्रायड के पहले अब हम वहीं कभी नहीं पहुंच सकेंगे। एक नया शिखर छू लिया गया है और एक नयी समझ पैदा हो गई है। वह बात समझ लेनी चाहिए। पुराना धर्म सिखाता था आदमी को दमन और 'सप्रेशन'। काम है, क्रोध है, लोभ है, सभी को दबाना है और नष्ट कर देना है। तभी आत्मा उपलब्ध होगी और तभी परमात्मा उपलब्ध होगा। यह लड़ाई बहुत लम्बी चली है। इस लड़ाई के हजारों साल के इतिहास में मुश्किल से दस-पांच लोग हैं जिनको हम कह पायें कि उन्होंने परमात्मा

को पा लिया। एक अर्थ में यह लड़ाई सफल नहीं हुई। क्योंकि अरबों-खरबों लोग बिना परमात्मा को पाये मरे हैं। जरूर कहीं कोई बुनियादी भूल है। यह ऐसे ही है जैसे कि कोई माली पचास हजार पौधे लगाये और एक पौधे में फूल आ जायं और फिर भी हम उस माली के शास्त्र को मानते चले जायं और हम कहें कि देखो एक पौधे में फूल आये और हम इस बात का ख्याल ही भूल जायं कि पचास करोड़ पौधों में से अगर एक पौधे में फूल आते हैं, तो यह माली की वजह से न आये होंगे, यह माली से किसी तरह बच गया होगा पौधा इसलिए आ गये हैं। यदि माली के पचास करोड़ पौधे जिन में फूल नही आते, पत्ते नही लगते, सूखे ठूंठ रह जाते हैं, तो एक बुद्ध, एक महावीर, एक क्राइस्ट अगर परमात्मा को उपलब्ध हो जाते हैं तो द्वन्द्वग्रस्त धर्मों के बावजद भी यह कोई धर्मों की सफलता का प्रमाण नहीं है। धर्मों की सफलता का प्रमाण तो तब होगा, माली को तब सफल समझा जाएगा, जब पचास करोड़ पौधों में फूल लगें और एक में न लग पायें, तो क्षमा करना ही होगा। तब यह कहा जा सकेगा कि यह पौधे की ही गलती होगी। इसमें माली की गलती नहीं हो सकती। पौधा बच गया होगा माली से इसलिए सूख गया है, इसलिए फूल नही आया।

फ्रायड के साथ ही एक नयी चेतना का जन्म हुआ और वह यह कि दमन गलत है। दमन मनुष्य को आत्महिंसा में डाल देता है। आदमी अपने से ही लड़ने लगे तो सिर्फ नष्ट हो सकता है। अगर मैं अपने बायें और दायें हाथ को लड़ाऊं, तो न तो बायां, न दायां जीतेगा, लेकिन मैं हार जाऊंगा। दोनों हाथ लड़ेंगे और मैं मिटूंगा। तो दमन ने मनुष्य को आत्मघाती बना दिया। उसने अपनी ही हत्या अपने हाथों कर ली। फ्रायड के बाद जो चेतना का जन्म हुआ है और जो समझ आयी है, उस समझ के लिए कृष्ण ही अकेले सार्थक मालूम पड़ते हैं—यानी मनुष्य जाति के इतिहास में कृष्ण अकेले हैं जो दमनवादी नहीं हैं। वे जीवन के सब द्वंद्वों को स्वीकार किए हुये हैं। वे प्रेम से भागते नहीं, वे पुरुष होकर स्त्री से पलायन नहीं करते, वे परमात्मा को अनुभव करते हुये युद्ध से विमुख नहीं होते। वे करुणा और प्रेम से भरे होते हुए भी युद्ध में लड़ने की सामर्थ्य रखते हैं। अहिंसक चित्त है उनका, फिर भी हिंसा के ठेठ दवानल में उतर जाते हैं। अमृत की स्वीकृति है उन्हें, लेकिन जहर से कोई भय भी नहीं है। और सच तो यह है कि जिसे भी अमृत का पता चल गया है उसे जहर का भय मिट जाना चाहिए। ऐसा अमृत ही क्या जो जहर से डरता चला जाय! जिसे अहिंसा का सूत्र मिल गया उसे हिंसा का भय मिट जाना चाहिए। ऐसी अहिंसा ही क्या, जो अभी हिंसा से भयभीत

और घबड़ायी हुई है। ऐसी आत्मा ही क्या, जो शरीर से भी डरती है और बचती भी है। और ऐसे परमात्मा का क्या अर्थ है, जो सारे संसार को अपने आलिंगन में न ले सकता हो। तो कृष्ण द्वन्द्व को एक साथ स्वीकार कर लेते हैं। इसलिए द्वन्द्व के अतीत हो जाते हैं। तो अंतिम अंश जो है अतीत, जो हो जाना है, वह द्वन्द्व में पड़ के कभी सम्भव नहीं है। वह द्वन्द्व को एक साथ स्वीकार कर लेने से सम्भव है।

तो भविष्य के लिए कृष्ण की बड़ी आवश्यकता है और भविष्य में कृष्ण का मूल्य निरंतर बढ़ता ही जाने का है। जबकि सबके मूल्य फीके पड़ जाएंगे, और द्वन्द्व भरे धर्म जबकि पीछे अन्धेरे में डूब जायेंगे और इतिहास की राख उन्हें दबा देगी, तब भी कृष्ण का अंगार चमकता हुआ रहेगा, और भी निखरेगा। क्योंकि पहली दफा मनुष्य इस योग्य होगा कि कृष्ण को समझ पायेगा, नहीं तो समझना बड़ा कठिन है। आसान है यह बात समझना कि एक आदमी संसार को छोड़कर चला जाय और शान्त हो जाय। कठिन है इस बात को समझना कि संसार के संघर्ष के बीच में खड़ा होकर शान्त हो जाय। आसान है यह बात समझ लेना कि एक आदमी विरक्त हो जाय। आसक्ति से सम्बन्ध तोड़ के भाग जाय। कठिन है यह बात समझनी कि जीवन के सारे उपद्रवों के बीच,जीवन के सारे उपद्रवों में लिप्त, जीवन के सारे दूर-दराज कोहरे ओर आंधियों में खड़ा हुआ दिया हिलता न हो, उसकी लौ कंपती न हो। कठिन है यह समझना। इसलिए कृष्ण को समझना बहुत कठिन है। निकटतम जो कृष्ण के थे वे भी नहीं समझ सकते थे। लेकिन पहली दफा एक महान प्रयोग हुआ है। पहली दफा आदमी में अपनी शक्ति का पूरा परीक्षण कृष्ण ने किया। ऐसा परीक्षण कि सम्बन्धों में रहते हुए असंबद्ध रहा जा सके। युध्द के क्षण में भी करुणा न मिटे। हिसा की तलवार हाथ में हो तो भी प्रेम का दिया मन से न बुझे। इसलिए कृष्ण को जिन्होंने पूजा भी है, जिन्होंने आराधना भी की है उन्होंने भी कृष्ण के टुकड़े–टुकड़े करके की है। सूरदास के कृष्ण कभी बच्चे से बड़े नहीं हो पाये। बड़े कृष्ण के साथ खतरा है। सूरदास बर्दाश्त न कर सके। क्योंकि बाल कृष्ण अगर गांवों की स्त्रियों को छेड़ आता है तो हमें बहुत कठिनाई नहीं है। लेकिन युवा कृष्ण जब गांवों की स्त्रियों को छेड़ देगा तो फिर बहुत मुश्किल हो जाएगी। फिर हमें समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि हम अपने ही तल पर तो समझ सकते हैं। हमारे अपने तल के अतिरिक्त समझने का हमारे पास कोई उपाय नहीं है। कोई कृष्ण के एक रूप को चुन लेगा, कोई दूसरे रूप को चुन लेगा, तो गीता

से प्रेम करने वाले भागवत की उपेक्षा कर जायेंगे। क्योंकि भागवत का कृष्ण और ही है। भागवत को प्रेम करने वाले गीता की चर्चा में न पड़ेंगे। क्योंकि कहां राग–रंग और कहां युध्द का मैदान! इनके बीच कोई ताल-मेल नहीं है। शायद कृष्ण से बड़ा विरोधों को एक साथ पी लेने वाला कोई व्यक्तित्व ही नहीं है। इसलिए कृष्ण की एक–एक शक्ल को लोगों ने पकड़ लिया है। जो जिसे प्रीतिकर लगी है उसे छांट लिया है। बाकी शक्ल को उसने निकाल दिया है।

गांधी गीता को माता कहते हैं, लेकिन गीता को आत्मसात नहीं कर सके। क्योंकि गांधी की अहिंसा युध्द की सम्भावनाओं को कहां रखेगी? तो गांधी उपाय खोजते हैं। तब वे कहते हैं : युध्द जो है यह सबके भीतर है। युद्ध बाहर कभी हुआ नहीं। यह मनुष्य के भीतर अच्छाई और बुराई की लड़ाई है। यह जो कुरुक्षेत्र है यह कहीं बाहर युध्द का मैदान नहीं है। और ऐसा नहीं है कि कृष्ण ने कहीं अर्जुन को किसी बाहर के युध्द में लड़ाया हो। यह तो भीतर के युध्द की रूपक कथा है। एक पैरेबल, एक कहानी, एक प्रतीक है। गांधी की कठिनाई है। क्योंकि गांधी का जैसा मन है उसको तो अर्जुन ही ठीक मालूम होगा। अर्जुन के मन में बड़ी अहिंसा का उदय हुआ है। वह युध्द छोड़कर भाग जाने को तैयार है। वह कहता है: अपने को मारने से फायदा क्या है। और वह कहता है इतनी हिंसा करके भी, धन पा के भी, यश पा के भी, राज्य पाकर भी मैं क्या करूंगा! इससे तो बेहतर है कि मैं सब छोड़कर भिखमंगा हो जाऊं। इससे तो बेहतर है कि मैं भाग जाऊं और सारे दुःख वरण कर लूं, लेकिन हिंसा में न पड़ूं। इससे मेरा मन बड़ा कंपता है ! इतनी हिंसा अशुभ है! कृष्ण की बात गांधी की पकड़ में कैसे आ सकती है ? कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि तू बैठ, और लड़ने के लिए जो तर्क देते हैं वह ऐसा अनूठा है कि इससे पहले कभी भी नहीं दिया गया है। वह परम अहिंसक ही दे सकता है। कृष्ण का तर्क यह है कि जबतक तू ऐसा मानता है कि कोई मर सकता है तबतक तू जानता नहीं है। तबतक तुझे पता ही नहीं है कि जो भीतर है वह न कभी मरा है, न मर सकता है। अगर तू सोचता है कि मैं मार सकूंगा तो तू बड़ी भ्रांति में, बड़े अज्ञान में है। क्योंकि मारने की धारणा ही भौतिकवादी की धारणा है। जो जानता है इसलिए कभी मरता नहीं है। तो अकेले हैं कृष्ण जो कह रहे हैं मरना और मारना– लीला है, एक नाटक है।

इस सन्दर्भ में यह कह देना उचित होगा कि राम के जीवन को हम चरित्र कहते हैं। राम बड़े गम्भीर हैं। उनका जीवन लीला नहीं है, चरित्र ही है। कृष्ण गम्भीर नहीं हैं। कृष्ण का चरित्र नहीं है। कृष्ण की लीला है। राम मर्यादाओं में बंधे हुए व्यक्ति हैं। मर्यादाओं के बाहर वे एक कदम भी नहीं बढ़ेंगे। मर्यादा पर वे सब कुर्बान कर देंगे। कृष्ण के जीवन में मर्यादा जैसी कोई चीज नहीं है। उनका जीवन, अमर्याद, पूर्ण स्वतंत्र है; जिसकी कोई सीमा नहीं, जो कहीं भी जा सकता है। ऐसी कोई जगह नहीं जहां वह रुके। ऐसी कोई सीमा नहीं आती जहां वह भयभीत हो और कदम को ठहराये। यह अमर्यादा भी कृष्ण के आत्म-अनुभव का अंतिम फल है। तो हिंसा भी बेमानी हो गई है वहां, क्योंकि हिंसा हो नहीं सकती। और जहां हिंसा ही बेमानी हो गई है वहां अहिंसा भी बेमानी हो जाती है। क्योंकि जबतक हिंसा सार्थक है और हिंसा हो सकती है तभी तक अहिंसा भी सार्थक है। असल में हिंसक अपने को मानना भौतिकवाद है, अहिंसक अपने को मानना इसी भौतिकवाद का दूसरा छोर है। एक मानता है, मैं मार डालूंगा। एक मानता है, मैं मारूंगा नहीं, मैं मारने को राजी ही नहीं हूं। लेकिन दोनों मानते हैं कि मारा जा सकता है। ऐसा आध्यात्म कि युद्ध को भी खेल मान लेता है और जीवन की सारी दशाओं — राग की, प्रेम की, भोग की, काम की, योग की, ध्यान की समस्त दशाओं को एक साथ स्वीकार कर लेता है। इस समग्रता के दर्शन को समझने की सम्भावना रोज बढ़ती जा रही है। क्योंकि अब हमें कुछ बातें पता चली हैं जो हमें कभी भी पता नहीं थीं। लेकिन कृष्ण को निश्चित ही पता रही हैं। जैसे हमें आज जाकर पता चला है कि शरीर और आत्मा जैसी दो चीजें नहीं हैं। आत्मा का जो छोर दिखाई पड़ता है वह शरीर है, और शरीर का जो छोर दिखाई नहीं पड़ता है वह आत्मा है। परमात्मा और संसार जैसी दो चीजें नहीं हैं। परमात्मा और प्रकृति जैसा द्वन्द्व नहीं है कहीं। परमात्मा का जो हिस्सा दृश्य हो गया है वह प्रकृति है, जो अदृश्य है वह परमात्मा है। कहीं भी कोई ऐसी जगह नहीं है जहां प्रकृति खतम होती है और परमात्मा शुरू होता है। बस प्रकृति ही लीन होते होते परमात्मा बन जाती है। परमात्मा ही प्रकट होते होते प्रकृति बन जाता है। अद्वैत का यही अर्थ है। और इस अद्वैत की अगर हमें धारणा स्पष्ट हो जाय, इसकी प्रतीति हो जाय, तो कृष्ण को समझा जा सकता है। साथ ही भविष्य

में कृष्ण का मूल्य और कृष्ण की सार्थकता और ज्यादा बढ़ने को है। तब कृष्ण मनुष्य के और निकट आ जाएंगे।

बड़े लम्बे संघर्ष और बड़े लम्बे ज्ञान की खोज के बाद ज्ञात हो सका है कि जिन शक्तियों से हम लड़ते हैं वे शक्तियां हमारी हैं और वो हम ही हैं। इसलिए उनसे लड़ने से बड़ा कोई पागलपन नहीं हो सकता। और यह भी ज्ञात हुआ है कि जिससे हम लड़ते हैं हम सदा के लिए उसी से घिरे रह जाते हैं। और यह भी ज्ञात हुआ है कि जिससे हम लड़ते हैं उसे हम कभी रूपान्तरित नहीं कर पाते, उसका 'ट्रांसफर्मेशन' नहीं होता। अगर कोई व्यक्ति काम से लड़ेगा तो उसके जीवन में ब्रह्मचर्य कभी भी घटित नहीं होगा। अगर ब्रह्मचर्य घटित हो सकता है तो एक ही उपाय है कि वह काम की ऊर्जा को कैसे रूपान्तरित करे। काम की ऊर्जा से लड़ना नहीं है, काम की ऊर्जा से सहयोग करना है। काम को ऊर्जा से दुश्मनी नहीं लेनी है, काम की ऊर्जा से मैत्री साधनी है। हम सिर्फ उसी को बदल सकते हैं जिससे हमारी मैत्री है। जिसके हम शत्रु हो गये उसके बदलने का सवाल नहीं। जिसके हम शत्रु हो गये उसको समझने का भी उपाय नहीं। समझ भी हम उसे ही सकते हैं जिससे हमारी मैत्री हो। जो हमें निकृष्टतम दिखाई दे रहा है वह भी श्रेष्ठतम का ही छोर है। पर्वत का जो बहुत ऊपर का शिखर है वह, और पर्वत के पास की जो बहुत गहरी खाई है वह, दो घटनाएं नहीं हैं। यह एक ही घटना के दो हिस्से हैं। यह जो खाई बनी है, यह पर्वत के ऊपर उठने से बनी है। यह जो पर्वत ऊपर उठ सका है यह खाई के बनने से ऊपर उठ सका है। यह दो चीजें नहीं हैं। यह पर्वत और खाई हमारी भाषा में दो हैं, अस्तित्व में एक ही चीज के दो छोर हैं। नीत्से का एक बहुत कीमती वचन है। नीत्से ने कहा है जिस वृक्ष को आकाश की ऊंचाई छूनी है उसे अपनी जड़ें पाताल की गहराई तक पहुंचानी पड़ती हैं। और अगर कोई वृक्ष अपनी जड़ों को पाताल तक पहुंचाने से डरता है, तो उसे आकाश तक पहुंचने की आकांक्षा भी छोड़ देनी पड़ती है। असल में जितनी ऊंचाई, उतने गहरे भी जाना पड़ता है। जितना ऊंचा जाना है, उतने ही नीचे भी जाना पड़ता है। नीचाई और ऊंचाई दो चीजें नहीं हैं। एक ही चीज के दो आयाम हैं और वे सदा समानुपाती हैं। एक ही अनुपात में बढ़ते हैं। मनुष्य के मन ने सदा चाहा कि वह चुनाव कर ले, सदा चाहा कि स्वर्ग को बचा ले और नर्क को छोड़ दे। उसने चाहा कि शान्ति को बचा ले, तनाव को छोड़ दे। उसने चाहा कि शुभ को

बचा ले, अशुभ को छोड़ दे। उसन चाहा, प्रकाश ही प्रकाश रहे, अन्धकार न रहे। मनुष्य के मन ने अस्तित्व को दो हिस्सों में तोड़ के एक हिस्से का चुनाव किया और दूसरे का इन्कार किया। इससे द्वन्द्व पैदा हुआ, इससे द्वैत पैदा हुआ। कृष्ण दोनों को एक साथ स्वीकार करने के प्रतीक हैं। और जो दोनों को एक साथ स्वीकार करता है वही पूर्ण है, नहीं तो अपूर्ण ही रह जाएगा। जितने को चुनेगा उतना हिस्सा रह जाएगा और जिससे इन्कार करेगा उससे सदा बंधा रहेगा, उससे बाहर नहीं जा सकता। जो व्यक्ति काम का दमन करेगा उसका चित्त कामुक से कामुक होता चला जाएगा। इसलिए जो संस्कृति, जो धर्म काम का दमन सिखाता है; वह संस्कृति, वह धर्म कामुकता पैदा कर रहा है।

अब हमें दिखाई पड़ना शुरू हुआ है कि काम की ऊर्जा, जो 'सेक्स इनर्जी' है वही ऊर्ध्व गमन करती है। ब्रह्मचर्य के उच्चतम शिखरों को छ पाती है। जीवन में किसी से भागना नहीं है और जीवन में किसी को छोड़ना नहीं है। जीवन को पूरा ही स्वीकार करके जीना है। उसको जो समग्रता से जीता है वह जीवन की पूर्णता को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए मैं कहता हूं कि भविष्य के सन्दर्भ में कृष्ण का बहुत मूल्य है। **हमारा वर्तमान युग उस भविष्य के करीब पहुंच रहा है जहां कृष्ण की प्रतिमा निखरती जाएगी और एक हंसता हुआ धर्म, एक नाचता हुआ धर्म जल्दी निर्मित होगा। धर्म की बुनियादों में कृष्ण का पत्थर जरूर रहना चाहिए।**

प्रश्न : कृष्ण चाहते तो महाभारत का युद्ध रोक सकते थे लेकिन उन्होंने वैसा नहीं किया और भारत का उससे पतन हुआ, जिसकी बहुत बड़ी जिम्मेवारी कृष्ण पर है और कृष्ण पर इसका लांछन लग सकता है?

उत्तर : युद्ध और शान्ति के सम्बन्ध में भी बात यही है। हम चाहते हैं शान्ति ही बचे, संघर्ष न बचे। फिर हम चुनाव शुरू करते हैं। और जगत जो है वह द्वन्द्वों का सम्मेलन है। और जगत जो है वह बृहद् विरोधी स्वरों का सम्यक संगीत है। जगत इकसुरा नहीं हो सकता। मैंने सुना है कि एक आदमी कोई वाद्य यंत्र बजाता था और वह तार पर एक ही जगह अंगुली रखकर घंटों उसी जगह को रगड़ता रहता था। तो घर के लोग परेशान हो ही गये, उसके पास-पड़ौस के लोग भी परेशान हो गये। अनेक लोगों ने उससे प्रार्थना की कि हम लोगों ने बहुत वाद्य बजाने वाले देखे, लेकिन सभी का हाथ सरकता है, सभी के भिन्न स्वर निकलते हैं, तुमने यह क्या राग ले रखा है? उस

आदमी ने कहा --"वह इसलिए कि वे भी ठीक स्थान खोज रहे हैं! मैंने ठीक स्थान पा लिया है। मैं ठीक स्थान पर रुका हुआ हूं। इसलिए मुझे अब कोई खोज की जरूरत नहीं है।" हमारा मन भी यही कर सकता है कि हम एक ही स्वर चुन लें जीवन का। लेकिन एक ही स्वर सिर्फ मृत्यु में हो सकता है। जीवन तो विरोधी स्वरों पर ही खड़ा होगा। तुमने अगर किसी मकान के दरवाजे पर 'आर्च' (मेहराब) देखा है बना हुआ -- कितनी विरोधी ईंटें लगी हुई हैं उसमें। ये विरोधी ईंटें एक दूसरे के विरोध में खड़ी होने की वजह से भवन के बड़े वजन को उठा लेती हैं। कोई सोच सकता है कि इन्हें एक ही में दिशा क्यों न लगा दें? फिर तो भवन गिरेगा, फिर भवन बनेगा नहीं।

जीवन की सारी व्यवस्था विरोधी स्वरों के तनाव पर है। युद्ध भी उस तनाव का हिस्सा है। युद्ध नुकसान ही पहुंचाये, ऐसा जो सोचते हैं वह गलत सोचते हैं, वह अधूरा सोचते हैं। अगर हम मनुष्यता के विकास को समझ लें, तो हमें पता चलेगा कि मनुष्यता के विकास का अधिकतम हिस्सा युद्धों के माध्यम से हुआ है। आज मनुष्य के पास जो कुछ है वह सब उसने प्राथमिक रूप से युद्धों में खोजा है। अगर आज हमें दिखाई पड़ते हैं कि सारी पृथ्वी पर रास्ते फैल गये हैं, तो पहली दफा वे रास्ते युद्धों के लिए बने थे, फौजों को भेजने के लिए बने थे। दो आदमियों को मिलाने के लिए नहीं बने थे, बरात ले जाने के लिए नहीं बने थे। वह युद्धों के लिए बने थे। और भी जितने साधन हैं, जैसे अगर आज हम बड़े मकान देख रहे हैं तो पहले बड़ा मकान नहीं बना था, बड़ा किला बना था और वह युद्ध की जरूरत थी। पहली दीवाल दुश्मन के खिलाफ लड़ने के लिए बनायी गयी थी। फिर दीवालें बनीं और अब आकाश को छूते हुए मकान हैं। आज हम सोच भी नहीं सकते कि आकाश को छूता हुआ मकान युद्ध की जरूरत है। मनुष्य के पास जितनी भी सम्पन्नता है और जितने भी साधन हैं और जितने भी वैज्ञानिक आविष्कार हैं, वे सब युद्ध के माध्यम से हुए हैं। असल में युद्ध ऐसे तनावों की स्थिति पैदा कर देता है, ऐसी चुनौती कि हमारे भीतर जो सोई शक्तियां हैं, उन सबको जाग कर सक्रिय होना पड़ता है। शांति के क्षण में हम आलस्य में हो सकते हैं, तमस में हो सकते हैं। युद्ध हमारे राजस को उभारता है। हमारे भीतर सोई शक्तियों को चुनौती के मौके पर उठना ही पड़ता है। इसलिए युद्ध के क्षण में हम साधारण नहीं रह जाते हैं, हम असाधारण हो जाते हैं और मनुष्य

का मस्तिष्क अपनी पूरी शक्ति से काम करने लगता है। युद्ध में एक छलांग लग जाती है मनुष्य की प्रतिभा की, जो कि शांति के कालों में सैकड़ों वर्षों में नहीं लग पाती।

अनेक लोगों का ऐसा ख्याल है कि अगर कृष्ण ने महाभारत का युद्ध रोका होता तो भारत बड़ा संपन्न होता, तो भारत ने बड़े विकास के शिखर छू लिए होते। बात इसके बिल्कुल उल्टी है। अगर कृष्ण जैसे दस-पांच हमें और भारत के इतिहास में मिले होते और हमने एक महाभारत नहीं, दस-पांच महाभारत लड़े होते, तो हम विकास के शिखरों पर होते। महाभारत को हुए अन्दाजन पांच हजार से ज्यादा वर्ष हुए होंगे। पांच हजार वर्षों में हमने इधर कोई बड़ा युद्ध नहीं किया। बाकी हमारी लड़ाइयों की कोई ज्यादा कीमत नहीं है, वे छोटे-मोटे झगड़े हैं, उनको युद्ध कहना भी उचित नहीं है। पांच हजार वर्षों से हमने कोई बड़ा युद्ध नहीं लड़ा। अगर छोटे युद्धों की वजह से हानि हुई होती और विध्वंस हुआ होता तब तो हमें पृथ्वी पर सबसे ज्यादा संपन्न और विकासमान होना चाहिए था। लेकिन हालतें उल्टी हैं। जिन मुल्कों ने बड़े युद्ध लड़े हैं, वे बहुत विकासमान हैं और बहुत सम्पन्न हैं। पहले महायुद्ध के बाद लोग सोच रहे थे कि जर्मनी अब सदा के लिए डूब जायगा, लेकिन दूसरे महायुद्ध में जर्मनी पहले महायुद्ध के जर्मनी से अनन्तगुना शक्तिशाली हो के प्रकट हुआ — सिर्फ बीस साल के फासले पर। कोई सोच भी नहीं सकता था कि पहले महायुद्ध के बाद दूसरा महायुद्ध जर्मनी कर सकेगा। दो-चार सौ साल तक कुछ भी नहीं कर सकेगा, इसकी भी संभावना थी। इन बीस सालों में जर्मनी अनंतगुना शक्तिशाली होकर बाहर आया है। तो पहले महायुद्ध ने उसकी शक्तियों को जिस तीव्रता पर पहुंचा दिया उस तीव्रता का उसने उपयोग कर लिया। अभी पिछले दूसरे महायुद्ध में लगता था कि अब शायद युद्ध कभी होना मुश्किल हो जायगा। लेकिन दो देश जो सबसे ज्यादा मिटे थे — जर्मनी और जापान — वे दोनों के दोनों फिर संपन्न होकर खड़े हो गये हैं। आज जापान को देखकर कोई कह सकता है कि बीस साल पहले एटम बम इसी मुल्क पर गिरा था? आज जापान को देखकर कोई नहीं कह सकता। हिंदुस्तान को देखकर जरूर हम कह सकते हैं कि एटम बम गिरते ही रहे होंगे इस पर। हमारी दुर्दशा देखकर लगता है कि यहां पर तो युद्ध होता ही रहा था। महाभारत के कारण हिन्दुस्तान का बहुत हित नहीं हुआ, क्यों कि महाभारत की छाया में हिन्दुस्तान में जो शिक्षक पैदा हुए वे सब युद्ध विरोधी थे। उन्होंने महाभारत का

शोषण किया और कहा कि ऐसा युद्ध और ऐसी हिंसा! न अब युद्ध करना है, न अब हिंसा करनी है। अब लड़ना ही नहीं है! महाभारत के पीछे कृष्ण की क्षमता के व्यक्तियों की शृंखला हम पैदा नहीं कर पाये, अन्यथा महाभारत ने जिस छंचाई से हमारे देश की चेतना की लहर को छुआ था, हम हर बार इससे ज्यादा छंचाई की इस लहर को छू सकते थे और शायद आज हम पृथ्वी पर सबसे ज्यादा संपन्न और सबसे ज्यादा विकसित समाज होते। यह भी सोचने जैसा है कि महाभारत जैसा युद्ध विपन्न समाजों में घटित नहीं होता। युद्ध होने के लिए भी संपन्न होना जरूरी है और संपन्नता के लिए भी युद्ध का होना जरूरी है। आज करीब करीब पश्चिम उस जगह है जहां महाभारत के दिनों में हम पहुंच गये थे। आज जितने अस्त्र-शस्त्रों की बातें हैं, करीब करीब वे सभी अस्त्र-शस्त्र किसी न किसी रूप में महाभारत में प्रयोग किये गये थे। बड़ा संपन्न, बड़ा प्रतिभाशाली और बहुत वैज्ञानिक उन्नति का शिखर था वह। उस युद्ध के बाद ही निराशा के क्षण ने हमें पकड़ा। उस निराशा के क्षण का दुरुपयोग हुआ। उस निराशा के क्षण को पश्चिम में भी पकड़ा है कुछ ने। पश्चिम भी भयभीत हो गया है। और पश्चिम का अगर पतन होगा तो वह पश्चिम में जो शांतिवादी हैं, उनकी वजह से होगा। अगर पश्चिम ने शांतिवादियों की बात मान ली तो वह वहीं पहुंच जायगा जैसे महाभारत के बाद हम पहुंचे हैं। हिंदुस्तान ने शांतिवादियों की बात मान ली थी, इसलिए पांच हजार साल का लंबा चक्कर चला। इसे थोड़ा सोच लेना जरूरी है।

कृष्ण युद्धवादी नहीं हैं, लेकिन युद्ध को भी जीवन के खेल का हिस्सा मानते हैं। वे युद्धखोर नहीं हैं, किसी को मिटाने की कोई आकांक्षा नहीं है, किसी को दुःख देने का कोई ख्याल नहीं है। युद्ध न हो उसके सारे उपाय उन्होंने कर लिए थे। लेकिन जीवन की, शक्ति की और धर्म की कीमत पर युद्ध को बचाने के लिए वे राजी न थे। आखिर किसी भी चीज के बचाने की एक सीमा है। आखिर वे युद्ध को इसीलिए नहीं करना चाहते थे कि जीवन को कोई नुकसान न पहुंच सके। लेकिन अगर युद्ध के न होने से ही जीवन को नुकसान पहुंच रहा है, तो फिर क्या अर्थ रह जायगा इस शांति का! आखिर शांतिवादी यही तो कहता कि युद्ध न हो, कहीं शांति खंडित न हो जाय। लेकिन अगर युद्ध के न होने से ही शांति खंडित हो रही है, तो उसे एक निर्णायक युद्ध की सामर्थ्य चाहिए। तो कृष्ण असल में युद्धखोर या युद्धवादी नहीं हैं। लेकिन युद्ध से भयभीत, और युद्ध से भागने वाले पलायनवादी भी

नहीं हैं। कृष्ण कहते हैं कि युद्ध न हो तो ठीक, लेकिन युद्ध होना ही हो, तो भागना ठीक नहीं है। अगर युद्ध होना ही हो और ऐसा क्षण आ जाय कि मनुष्य के मंगल के लिए और मनुष्य के हित के लिए युद्ध अनिवार्य हो जाय, तो उस अनिवार्य युद्ध को फिर आनंद से स्वीकार कर लें। फिर उसे बोझ की तरह ढोना भी ठीक नहीं, क्योंकि जो बोझ की तरह युद्ध में जायेगा उसकी हार सुनिश्चित है। जो सिर्फ रक्षा के लिए युद्ध में जायगा उसकी हार भी सुनिश्चित है। क्योंकि रक्षा के भाव से भरा हुआ 'डिफेंसिव' जो चित्त है, लड़ने में सामर्थ्य और शौर्य नहीं दिखा पाता, वह सिर्फ बचाव के ही उपाय करता रहता है और सिकुड़ता जाता है। तो कृष्ण लड़ने को भी आनन्द बनाने को कहते हैं — दूसरे को दुःख पहुंचाने का सवाल ही नहीं है। लेकिन जिन्दगी में चुनाव सदा अनुपात के हैं — शुभफलित होगा या अशुभ ? जरूरी नहीं है कि युद्ध से अशुभ ही फलित होगा। कभी युद्ध न करने से भी अशुभ फलित हो सकता है।

अब यह देश हमारा हजार साल तक गुलाम रहा। यह हमारे युद्ध करने की क्षमता की क्षीणता का परिणाम था। पांच हजार वर्ष से गरीब और दीन-हीन देश — हमारे शौर्य और हमारे व्यक्तित्व में जो अभय चाहिए उसकी कमी का परिणाम है। जो फैलाव चाहिए, विस्तार का जो भाव चाहिए उसकी कमी का परिणाम है। तो कृष्ण के कारण नुकसान नहीं हुआ. कृष्ण की शृंखला नहीं पैदा हो सकी, हम और कृष्ण पैदा नहीं कर सके, इसलिए नष्ट हो गये। महाभारत के युद्ध के बाद स्वाभाविक था कि निराशावादी सर्व प्रमुख हों। सदा होता है। और निराशावादी शिक्षक लोगों को समझायें कि व्यर्थ था यह सब — देखो, कितनी हानि हो गयी है! और वह स्वर हमारे मन में बैठ गया है। तभी तो पांच हजार साल से हम डरी हुई कौम हैं। जो कौम मरने से डर जाय और युद्ध से डर जाय, वह कौम बहुत गहरे में जीने से भी डर जाती है। हम जीने से भी डर गये हैं। हम कांप रहे हैं। न हम जी रहे हैं, न हम मर रहे हैं। हम दोनों के बीच में त्रिशंकु की भांति हैं। अब मेरी समझ यह है कि बर्टेन्ड रसेल या गांधी या विनोबा — इनकी बात अगर दुनिया मान लेगी तो नुकसान होगा। युद्ध से भय की कोई जरूरत नहीं है। अब पृथ्वी युद्ध के लिए बहुत छोटी पड़ गयी है, यह बात जरूर है। असल में युद्ध के लिए भी जगह चाहिए। हमारे पास साधन इतने बड़े हो गये हैं कि अब पथ्वी पर युद्ध नहीं हो सकेगा, यह बात जरूर सच है। लेकिन यह इस-

लिए सच नहीं है कि शांतिवादी की बात भय के कारण मानने योग्य है। यह इसलिए सच है कि अब हमारे पास साधन बड़े हैं और पृथ्वी छोटी है। अब पृथ्वी पर युद्ध बेमानी है। अब युद्ध की शकल बदलेगी। अब युद्ध का विस्तार बढ़ेगा — चांद-तारों पर, मंगल पर, ग्रहों-उपग्रहों पर — कहीं युद्ध शुरू होगा। वैज्ञानिकों का अंदाज है कि लगभग पचास करोड़ ग्रह होनें चाहिए सारे जगत में जिन पर जीवन होगा। तो आदमी भयभीत हो गया है कि हाईड्रोजन बम मत बनाओ, एटम बम मत बनाओ। अगर इससे भयभीत आदमी की बात को मान लिया गया, तो इस जगत के विस्तार पर जो अभियान हो सकता है, जो यात्रा हो सकती है, वह नहीं हो पायेगी। अब पृथ्वी जरूर उस जगह पहुंच गयी है जहां युद्ध बेमानी है। लेकिन यह किसलिए हुआ है, यह भी समझने जैसी बात है। युद्ध आज अर्थहीन हो गया है, इसलिए नहीं कि शांतिवादी की बात समझ में आ गयी, युद्ध इसलिए अर्थहीन हो गया कि युद्ध के विज्ञान का पूरा विकास हो गया है, 'टोटल वार' का विकास हो गया है। युद्ध इतना समग्र हो गया है अब, कि पृथ्वी पर लाना बेमानी है। क्योंकि युद्ध का तभी तक अर्थ है जब कोई जीतता हो और कोई हारता हो। अब जो युद्ध होगा उसमें न कोई जीतेगा, न कोई हारेगा, उसमें दोनों एक साथ मर जायेंगे। अब युद्ध का पृथ्वी पर कोई मतलब नहीं है। और मैं मानता हूं कि इसी वजह से पृथ्वी अब एक हो जायगी। अब एक 'ग्लोबल विलेज' से ज्यादा उसकी हालत नहीं है, जमीन एक छोटा-सा गांव हो गयी है, शायद गांव से भी छोटी। दो गांवों के बीच यात्रा में जितना समय लगता था अब पूरी पृथ्वी का चक्कर लगाने में उतना समय नहीं लगता है। तो पृथ्वी इतनी छोटी हो गयी है कि अब युद्ध पृथ्वी पर बेमानी है। अब पृथ्वी पर अगर युद्ध होता है तो वह नासमझी की बात है। इसका यह मतलब नहीं है कि युद्ध नहीं हो, इसका यह मतलब नहीं है कि युद्ध अब नहीं होंगे। युद्ध तो होते रहेंगे, लेकिन नयी भूमियों पर होंगे, नयी यात्राएं होंगी उनकी और नये अभियान होंगे। युद्ध बन्द नहीं हुआ, इतने समझाने वालों के बाद भी। वह बन्द नहीं हो सकता। वह जीवन का हिस्सा है। अब यह बड़े मजे की बात है कि युद्ध से क्या क्या पैदा हुआ? अगर हम बहुत गौर से देखें तो हमारे सहयोग की, 'कोआपरेशन' की सारी व्यवस्था युद्ध के लिए पैदा हुई है। 'कोआपरेशन फार कांफिल्क्ट' सारा सहयोग संघर्ष के लिए है। अगर जमीन पर युद्ध न हो तो कोई 'कोआपरेशन', कोई सहयोग नहीं।

तो कृष्ण को समझना बहुत जरूरी है। कृष्ण शांतिवादी नहीं हैं, कृष्ण युद्धवादी नहीं हैं। असल में वाद का मतलब होता है कि दो में से हम एक को चुनें। कृष्ण अ-वादी हैं। कृष्ण कहते हैं शांति से सुख फलित होता है तो स्वागत है। युद्ध से सुख फलित होता है तो स्वागत है। कृष्ण कहते हैं, जिससे मंगल-यात्रा गतिमान होती है, जिससे धर्म विकसित होता है, जिससे जीवन में आनंद की संभावना बढ़ती हैं उसका स्वागत है। ऐसा स्वागत चाहिए भी। हमारा देश अगर कृष्ण को समझा होता तो हम इस भांति नपुंसक न हो गये होते। हमने बहुत अच्छी अच्छी बातों के पीछे बहुत बहुत न मालूम कैसी कुरूपताएं छिपा रखी हैं। हमारी अहिंसा की बात के पीछे हमारी कायरता छिप के बैठ गयी है। हमारे युद्ध-विरोध के पीछे हमारे मरने का डर छिपकर बैठ गया है। लेकिन हमारे युद्ध न करने से युद्ध बन्द नहीं होता। हमारे युद्ध न करने से कोई और हम पर युद्ध जारी रखता है। हम लड़ने न जायें, इससे लड़ाई बन्द नहीं होती, सिर्फ हम गुलाम बनते हैं। और फिर भी हम लड़ाइयों में घसीटे जाते रहे हैं। अब यह बड़े मजे की बात है कि हम नहीं लड़े, कोई हम पर हावी हो गया और हमें गुलाम बना लिया, और फिर हम उसकी फौजों में लड़ते ही रहे। लड़ाई तो कोई बन्द नहीं हुई। कभी हम मुगलों की फौज में लड़े, कभी हम तुर्कों की फौज में लड़े, कभी हूणों की फौज में लड़े। हम गुलाम ही रहे और अपनी गुलामी को बचाने के लिए लड़ते रहे। फिर हम अंग्रेजों की फौज में लड़े। लड़ाई तो बन्द नहीं हुई। बस इतना ही हो गया कि वैसे हम अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ते, अपने जीवन के लिए लड़ते, फिर हम अपनी परतंत्रता के लिए लड़े। यह दुखद फल हुआ। यह महाभारत के कारण नहीं हुआ, यह सिर्फ हम महाभारत की हिम्मत न जुटा पाये, उसके कारण हुआ। इसलिए मैं कहता हूं कि कृष्ण को समझना थोड़ा मुश्किल तो है। बहुत आसान है समझ लेना एक युद्धवादी की बात -- एक हिटलर, एक मुसोलिनी, एक चंगेज, एक तैमूर, एक नेपोलियन, एक सिकंदर की बात। युद्धखोरों की बात समझ लेना बहुत आसान है। वे कहते हैं कि युद्ध ही जीवन है। शांतिवादी बर्टेन्ड रसेल हैं, गांधी हैं, उनकी बात भी समझ लेना बहुत आसान है -- वे कहते हैं कि नहीं, शांति ही जीवन है। कृष्ण की बात समझनी बहुत मुश्किल है; क्योंकि वह कहते हैं कि जीवन इन दोनों द्वारों से गुजरता है। वह शांति से भी गुजरता है, वह युद्ध से भी गुजरता है। और अगर तुम्हें

शांति बनाये रखनी हो, तो तुम्हें युद्ध की सामर्थ्य रखनी होगी। और अगर तुम्हें युद्ध जारी रखना है, तो तुम्हें शांति की तैयारी भी करनी होगी। ये दो पैर हैं जीवन के। इनमें से एक को भी काटा तो लंगड़े और पंगु हो जाते हैं। तैमूर, चंगेज और मुसोलिनी भी लंगड़े हैं, और गांधी और रसेल भी लंगड़े हैं। उनके एक-एक पैर हैं। उनसे गति नहीं हो सकती। और इसलिए अगर एक-एक पैर वाले आदमी रहे तो फिर एक पैर मुसोलिनी का चलता है, एक पैर गांधी का चलता है। जब मुसोलिनी अपना युद्ध कर लेता है और हिटलर, स्टालिन अपने युद्ध से गुजर जाते हैं, तब रसेल और गांधी और विनोबा की बात हमें एकदम अपील करने लगती है। दस-बीस साल इनकी बात अपील करती है। चूंकि एक लंगड़ा पैर ज्यादा दिन नहीं चल सकता, तो दूसरे पैर की जरूरत पड़ जाती है। उसपर कोई माओ खड़ा होगा, फिर कोई और खड़ा होगा। फिर युद्ध बीच में आता है। कृष्ण के पास दोनों पैर हैं। कृष्ण लंगड़े आदमी नहीं हैं। और मैं मानता हूं कि दोनों पैर प्रत्येक के पास होने चाहिए। जो आदमी लड़ न सके उसमें कुछ कमी होती है, और जो आदमी लड़ न सके वह आदमी ठीक अर्थों में शांत भी नही हो पाता। वह लंगड़ा हो जाता है। जो आदमी शांत न हो सके, वह विक्षिप्त हो जाता है। और जो आदमी शांत न हो सके वह लड़ेगा कैसे? लड़ने के लिए भी एक शांति चाहिए। कृष्ण इस अर्थ में भी भविष्य के लिए उपयोगी हैं। क्योंकि भविष्य में यदि निर्णायक एक बात तय होती है कि सारी दुनिया को शांतिवादी बनाना है तो एक तरह का मुर्दापन छा जायगा। लेकिन शांतिवादी मानेगा नहीं, वह अपना जुलूस निकालता रहेगा और शांति के झंडे लगाता रहेगा। लेकिन युद्धखोर अपने युद्ध की तैयारी करता रहेगा। फैशन बदलते रहते हैं। दस-बीस साल इसका प्रभाव रहता है। और ये दोनों एक दूसरे के साझे में काम चलाते रहते हैं। कृष्ण की बात समग्र जीवन की है और अगर हमारी समझ में आ जाय, तो न तो शांति को छोड़ने की जरूरत है, न युद्ध को छोड़ने की जरूरत है। युद्ध के तल रोज बदलते जायेंगे निश्चित ही, क्योंकि कृष्ण कोई चंगेज नहीं हैं। किसी की हत्या करने के लिए, किसी को दुःख देने के लिए उनकी कोई आतुरता नहीं है। लेकिन युद्ध के तल बदलते जायेंगे। अगर आदमी आदमी से न लड़े तो सब आदमी मिलकर प्रकृति से लड़ना शुरू कर देंगे।

अब यह जरा सोचने जैसी बात है कि जिन कौमों में युद्ध चलते रहे, उन्हीं कौमों के लिए विज्ञान भी विकसित हुआ; क्योंकि लड़ने की क्षमता

है उनमें। वे आदमी से भी लड़ते हैं, रस मिलता है तो प्रकृति से भी लड़ लेते हैं। लेकिन हमारी कौम ने महाभारत के बाद प्रकृति से भी कोई लड़ाई नहीं लड़ी। हम आंधी से भी नहीं लड़े, पहाड़ से भी नहीं लड़े, प्रकृति के किसी तत्व से भी नहीं लड़े, इसलिए हमारे देश में विज्ञान विकसित नहीं हुआ, क्योंकि हम प्रकृति से लड़ेंगे तो विकास होगा। आदमी लड़ता रहे, तो आज वह जमीन की प्रकृति से लड़ेगा और जमीन के राज़ खोज लेगा। फिर कल वह चांद-तारे की प्रकृति से लड़ेगा। उसका अभियान रुकेगा नहीं। इसलिए ध्यान रहे, जो समाज युद्ध में डूबे और उबरे, वही समाज चांद पर भी अपने आदमी को उतार पाया है। हम नहीं उतार पाये, शांतिवादी नहीं उतार पाया। और चांद आज नहीं कल, युद्ध के अर्थ, में बड़ा कीमती है। जिसके हाथ में चांद होगा उसके हाथ में पृथ्वी होगी; क्योंकि आने वाले युद्ध में जिसके हाथ चांद पर लग जायेंगे पृथ्वी उसके ही हाथों में होगी। इसलिए अब झगड़ा पृथ्वी से हट गया है। अब यह सब -- जैसे फिलीपाइन है, वियतनाम है, कम्बोडिया है या कुछ और है या हिन्दुस्तान है, पाकिस्तान है, इन सबमें लड़ाई-झगड़े नहीं, ये तो सिर्फ नासमझों के चित्त को उलझा रखने की तरकीबें हैं। असली लड़ाई अब दूसरे तल पर शुरू हो गयी है। चांद पर जाने की दौड़ का बहुत गहरा अर्थ दूसरा ही है। वह अर्थ यह है कि जिसके हाथ में कल चांद होगा उसको पृथ्वी पर चुनौती देने का कोई उपाय नहीं रह गया है। उसके एटम और उसके हाईड्रोजन बम की तोपें चांद से पृथ्वी की तरफ लगी होंगी। एक एक मुल्क के ऊपर उड़कर बम गिराने की जरूरत न रह जायेगी, मुल्क अपने आप बम के ताप के सामने आते रहेंगे हर चौबीस घंटे में। घूमती रहती है पृथ्वी पूरे वक्त, सामने आते रहते हैं विभिन्न मुल्क अपने आप। तब अलग अलग किसी मुल्क पर जाकर एटम को गिराने की जरूरत नहीं है। इसलिए, अरबों डालर जो खर्च हुआ, एक आदमी को चांद पर उतारने में, यह कोई खेल नहीं था। इसमें कुछ कारण थे पीछे, और कौन पहले उतार देता है वह जरूरी था। यह दौड़ वैसी ही है जैसे एकदम दौड़ आज से कोई तीन सौ साल पहले योरोप से एशिया की तरफ लग गयी थी। सारे जहाज एशिया की तरफ भागे जा रहे थे -- पुर्तगीज भी, स्पेनिश भी और अंग्रेज भी, फ्रेंच भी और जर्मन भी--सब भागे जा रहे थे। तीन सौ साल पहले जैसे एशिया की जमीन पर कब्जा करना जरूरी हो गया था विस्तारवादी के लिए, विकास के लिए, वह अब बेमानी हो गया। अब कोई मतलब

नहीं रहा। एशिया के लोग समझ रहे हैं कि हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई ने हमको आजाद किया है। इसमें आधी ही सचाई है। आधी सचाई तो दूसरी है, और वह यह है कि अब एशिया की जमीन पर कब्जा करने का कोई मतलब नहीं रह गया। वह बात खत्म हो गयी है, वह दौर खत्म हो गया है। अब तो लड़ाई कहीं और दूसरी जमीन पर कब्जा करने की है। अब वहां दृष्टि चली गयी है। अब वहां की दौड़ है। कल चांद-तारों पर और दूर तक दौड़ हो जायेगी। शक्ति का एक अभियान है जीवन में। उस अभियान में जो मुर्दापन को पकड़ लेते हैं वे धीरे धीरे नष्ट हो जाते हैं। हम ऐसी ही नष्ट हो गयी कौम हैं। इसलिए कृष्ण का संदेश बड़ा अर्थपूर्ण है। हमारे लिए ही नहीं, मैं मानता हूं, पश्चिम भी उस जगह खड़ा हो गया है, जहां उसे निर्णायक लड़ाई शायद पृथ्वी पर एक बार और लड़नी पड़े। निश्चित ही वह लड़ाई पृथ्वी पर नहीं होगी। अगर पृथ्वी के प्रतियोगियों में लड़ाई होगी, तो चांद या मंगल पर होगी। पृथ्वी पर कोई अर्थ नहीं है लड़ाई लड़ने का, क्योंकि दोनों मर जायेंगे। अगर उन दोनों को भी लड़ना है तो उन दोनों को किसी ग्रह - उपग्रह पर लड़कर तय करना पड़ेगा कि कौन जीतता है ?

इस निर्णायक लड़ाई में भी क्या होगा ? शायद हालतें फिर वैसी खड़ी हो जायेंगी जो महाभारत के समय थीं। महाभारत के समय भी दो वर्ग थे—एक वर्ग था जो निपट भौतिकवादी था, जिसकी पूरी दृष्टि शरीर के अतिरिक्त किसी को स्वीकार नहीं करती थी। जिसकी दृष्टि भोग के अतिरिक्त किसी तरह के योग के लिए कोई क्षमता न रखती थी। जिन्दगी थी भोग, लूट-खसोट। जिन्दगी शरीर और शरीर की इंद्रियों के बाहर कोई अर्थ न रखती थी। उसी वर्ग के खिलाफ वह संघर्ष हुआ था। कृष्ण को उस संघर्ष को करवाना पड़ा था। वह जरूरी हो गया था कि शुभ की शक्तियां कमजोर और नपुंसक सिद्ध न हों। वह अशुभ की शक्तियों के सामने खड़ी हो सकें। आज फिर करीब करीब हालत वैसी हो गयी है और हो जायेगी बीस साल के भीतर। एक तरफ भौतिकवाद, 'मैटीरियलिज्म' अपनी पूरी ताकत के साथ खड़ा हो जायगा और दूसरी तरफ शभ की कमजोर ताकतें। शुभ में एक बुनियादी कमजोरी है। वह लड़ने से हटना चाहता है। अर्जुन भला आदमी है। अर्जुन शब्द का मतलब होता है सीधा-सादा। तिरछा-विरछा जरा भी नहीं। बहुत सीधा-सादा आदमी है, सरल चित्त है। देखता है कि फिजूल की झंझट कौन करे? अर्जुन सदा ही हटता रहा है। क्योंकि जो सीधा-सादा आदमी है वह हट जाता है, वह

कहता है, मत झगड़ा करो। कृष्ण अर्जुन से कहीं ज्यादा सरल हैं, लेकिन सीधे-सादे नहीं हैं। कृष्ण की सरलता की कोई माप नहीं है, लेकिन सरलता कमजोरी नहीं है और सरलता पलायन नहीं है। वे जम के खड़े हो गये हैं, वे नहीं भागने देंगे।

हो सकता है शायद, फिर पृथ्वी दो हिस्सों में बंट जाये। सदा ऐसा होता है जब ऐसे निर्णायक क्षण आ जाते हैं, या लड़ने की बात होती है तो उसमें गांधी और विनोबा और रसेल काम नहीं देते, क्योंकि एक अर्थ में वे सब अर्जुन हैं। वे कहेंगे कि हट जाओ, वे कहेंगे कि मर जाओ लेकिन लड़ो मत। कृष्ण जैसे व्यक्तित्व की बड़ी जरूरत है जो कहे कि शुभ को भी लड़ना चाहिए, शुभ को भी तलवार हाथ में लेने की हिम्मत रखनी चाहिए। शुभ जब हाथ में तलवार लेता है तो किसी का अशुभ नहीं होता है। अशुभ हो नहीं सकता, क्योंकि लड़ने के लिए कोई लड़ाई नहीं है, लेकिन अशुभ न जीत पाये, इसलिए लड़ाई है। तो धीरे धीरे दो हिस्से दुनिया के बंट जायेंगे – यानी एक हिस्सा भौतिकवादी होगा और एक हिस्सा स्वतंत्रता, लोकतंत्र, व्यक्ति और जीवन के मूल्यों के लिए होगा। लेकिन क्या ऐसे दूसरे शुभ के वर्ग को कृष्ण मिल सकते हैं? मिल सकते हैं। क्योंकि जब भी मनुष्य की स्थितियां ऐसी जगह आ जाती हैं जहां कि कुछ निर्णायक घटना घटने को होती है तब हमारी स्थितियां उस चेतना को भी पुकार लेती हैं, उस चेतना को भी जन्म दे देती हैं, और वह व्यक्तित्व भी जन्म पा जाता है। इसलिए मैं कहता हूं कि कृष्ण का भविष्य के लिए बहुत अर्थ है।

महाभारत के बाद हिन्दुस्तान में बहुत अच्छे आदमी हुए -- बुद्ध हैं, महावीर हैं, इनकी अच्छाई की कोई कमी नहीं है, इनकी अच्छाई की कोई सीमा नहीं। लेकिन इनकी अच्छाई के प्रभाव में मुल्क सिकुड़ गया। हमारा चित्त सिकुड़ गया और उस सिकुड़े हुए चित्त पर सारी दुनिया के आक्रामक टूट पड़े। आक्रमण करने ही हम नहीं जाते हैं, आक्रमण को बुलाते भी हमीं हैं। अतः जब तुम किसी को मारते हो तभी तुम जिम्मेवार नहीं होते, जब तुम किसी की मार खाते हो तब भी तुम ही जिम्मेवार होते हो। क्योंकि किसी के चेहरे पर चांटा मारना भी एक कृत्य है, जिसमें पचास प्रतिशत तुम जिम्मेवार हो, पचास प्रतिशत वह आदमी जिम्मेवार है जिसने चांटे को निमंत्रित किया, सहा, स्वीकार किया, बुलाया, कि मारो। अगर तुमको कोई चांटा मारता है

तो पचास प्रतिशत तुम भी जिम्मेवार होते हो, तुम बुलाते हो। अच्छे आदमियों की इस लंबी कतार में, निपट अच्छे आदमियों ने, इस मुल्क के मन को सिकोड़ दिया, उन्होंने बुलाया, आमंत्रण दिया कि आओ। हमारा आमंत्रण मानकर बहुत लोग आये, उन्होंने हमें वर्षों तक गुलाम रखा, दबाया, परेशान किया। लेकिन अभी भी हमारी मनोदशा संकोच की है, हम फिर किसी को बुला सकते हैं। अगर कल माओ प्रवेश कर जाये इस मुल्क में, तो उसका जिम्मेवार अकेला माओ नहीं होगा। लेनिन ने बहुत वर्षों पहले एक भविष्यवाणी की थी कि मास्को से कम्युनिजम पेकिंग और कलकत्ता होता हुआ लंदन पहुंचेगा। उसकी भविष्यवाणी बड़ी सही मालूम पड़ती है। पेकिंग तो पहुंच गया, कलकत्ते में उसकी पगध्वनि सुनायी पड़ने लगी है। लंदन ज्यादा दूर नहीं है। अब कलकत्ते में कम्युनिजम को प्रवेश करने में कोई कठिनाई नहीं है; क्योंकि भारत का मन सिकुड़ा हुआ है, वह आ जायेगा, उसको स्वीकार करके देश और दब जायेगा।

इसलिए इस देश को तो कृष्ण पर पुनर्विचार करना ही चाहिए।

प्रश्न : कृष्ण यदि आज होते तो यह विश्व जो दो गुटों में बंटा है, उसमें किस गुट का पक्ष लेते ?

उत्तर : असल में जब भी ऐसा संकट का क्षण होता है, जब कि निर्णय करना हो कि कौन शुभ है, कौन अशुभ है, तब सदा ही कठिनाई होती है। महाभारत काल में भी आसान नहीं थी बात। क्योंकि उस तरफ दुर्योधन ही नहीं था भीष्म भी थे, उस तरफ अच्छे लोग भी थे। और इस तरफ, कृष्ण ही नहीं थे अर्जुन ही नहीं थे, इस तरफ बुरे लोग भी थे। निर्णय एक क्षण में तय करना सदा ही मुश्किल होता है। दुर्योधन किसलिए लड़ता था? आदमी उसके पास अच्छे थे या बरे, यह उतना मूल्यवान नहीं है। वह लड़ किसलिए रहा था, उस लड़ने के मूल्य क्या थे? कृष्ण अगर लड़ने को प्रेरित कर रहे थे अर्जुन को, तो मूल्य क्या थे ? बड़े से बड़ा निर्णायक मूल्य था– न्याय, 'जस्टिस'। न्याय क्या था, न्याययुक्त क्या था ? यदि आज हमें फिर यह निर्णय करना पड़े कि न्याययक्त क्या है तो मेरी समझ में, स्वतंत्रता न्याय है, परतंत्रता अन्याय है। जो ग्रुप, जो वर्ग, जो गुट मनुष्य को किसी तरह की परतन्त्रता में ढकेलता हो, वह अन्याय का पक्ष है। उस तरफ अच्छे आदमी भी हो सकते हैं; क्योंकि अच्छे आदमी जरूरी नहीं है कि दूर-द्रष्टा हों। वे कन्फयूज्ड भी हो सकते हैं। उनको भी पता नहीं होता कि वह जो कर रहे हैं वह बुरे के पक्ष में जा रहा है।

स्वतंत्रता बहुत ही कसौटी की बात है। मनुष्य की स्वतंत्रता जिस बात से बढ़ती हो, ऐसा समाज, ऐसा जगत चाहिए। जिस बात से स्वतंत्रता कम होती हो ऐसा समाज और ऐसा जगत नहीं चाहिए। स्वभावतः जो लोग परतंत्रता भी लाना चाहेंगे वे भी परतंत्रता शब्द का उपयोग नहीं करेंगे। वे भी ऐसे शब्द खोजेंगे जिनसे परतंत्रता आती हो, लेकिन परतंत्रता का भाव न प्रकट होता हो। ऐसा एक नया शब्द 'समानता' है। यह शब्द बहुत चालाकी से भरा हुआ है। कुछ लोग हैं जो स्वतंत्रता को एक तरफ काटकर समानता की गुहार करते हैं। वे कहते हैं कि समानता चाहिए। वे यह भी कहते हैं कि समानता के बिना स्वतंत्रता कैसे हो सकती है ? वे कहते हैं कि प्राथमिक चीज समानता है। और यह बात समझ में न भी पड़ेगी अनेकों को, क्योंकि ठीक ही तो बात है, सब लोग समान नहीं, तो सब लोग स्वतंत्र कैसे हो सकते हैं ? और तब यदि समानता को लाने के लिए स्वतंत्रता काटनी भी पड़ती हो, तो फिर हम तैयार हो जायेंगे। अब यह बड़े मजेदार तर्क है। समानता इसलिए लानी है कि स्वतंत्रता आ सके, और स्वतंत्रता इसलिए काटनी पड़ती है क्योंकि समानता लानी है। और एक बार स्वतंत्रता खोने के बाद उसे लाना बहुत असंभव है। कौन लायेगा ? मैं तुमसे कहता हूं, यहां सब इकट्ठे हैं, मैं इनको भी कहता हूं कि तुम सबको समान करने के लिए सबको पहले जंजीर पहननी पड़ेगी। किसी के हाथ बड़े हैं, किसी के पैर छोटे हैं तो सबको समान करने के लिए पहले जंजीरें डाल दी जायंगी, फिर सबके हाथ-पैर काट के हम सबको समान कर देंगे। लेकिन जो सबको समान करेगा वह तो असमान ही रह जायेगा ! वह तो आप सबके बाहर हो जायेगा, उसके हाथ तो खुले होंगे ! जंजीरें नहीं होंगी लेकिन उसके हाथ में तलवार होगी। और एक बार जब सबके हाथों में जंजीरें होंगी और कुछ लोगों के हाथों में तलवारें होंगी और हाथ-पैर कट चुके होंगे, तब तुम करोगे क्या ? ऐसा ख्याल था मार्क्स का कि एक बार समानता लाने के लिए स्वतंत्रता खोनी पड़ेगी, व्यक्तिगत स्वतंत्रता नष्ट करनी पड़ेगी, एक अधिनायकशाही, यह डिक्टेटरशिप चाहिए मुल्क में। फिर जब पूरा हो जायगा काम समानता का, तब स्वतंत्रता दे दी जायेगी। लेकिन जिनके हाथ में इतनी ताकत होगी सबको समान करने की, वे भला स्वतंत्रता देंगे ? लक्षण नहीं दिखायी पड़ते। बल्कि जितनी ताकत उनकी बढ़ जाती है और जितना दूसरा आदमी पंगु हो जाता है उतनी ही स्वतंत्रता की बात खत्म हो जाती है। क्योंकि पंगु पूछ भी नहीं सकते, आवाज भी नहीं उठा सकते, बगावत भी नहीं कर सकते ! समानता की आड़ में स्वतंत्रता कटेगी

और स्वतंत्रता एक बार कट जाय तो लौट आना बहुत मुश्किल मामला है। क्योंकि जब स्वतंत्रता कट जाती है, तो काटने वाला स्वतंत्रता के भविष्य की संभावनाओं को भी काट देता है। दूसरी बात यह कि स्वतंत्रता तो एक बिल्कुल ही सहज तत्व है जो प्रत्येक को मिलना चाहिए, और समानता बिल्कुल असहज बात है जो मिल नहीं सकती। यह अमनोवैज्ञानिक बात है कि हम आदमी को समान करें। आदमी समान हो नहीं सकता। आदमी समान है ही नहीं। आदमी मूलतः असमान है। स्वतंत्रता जरूर चाहिए। इतनी स्वतंत्रता चाहिए, कि जो व्यक्ति जो हो सकता है वह हो सके, उसमें उसको पूरा मौका चाहिए।

मेरी दृष्टि में स्वतंत्रता का पक्ष कृष्ण का पक्ष है। समानता का नहीं हो सकता। स्वतंत्रता हो तो धीरे-धीरे असमानता कम हो सकती है। ध्यान रहे, मैं कह रहा हूं, असमानता कम हो सकती है। यह नहीं कह रहा हूं कि समानता आ सकती है। लेकिन, समानता अगर जबरदस्ती थोपी जाय तो स्वतंत्रता कम होती चली जायगी। जबरदस्ती कोई भी थोपी गयी चीज परतंत्रता का पर्याय है। तो फिर मूल्य चुनने पड़ेंगे। व्यक्ति का मूल्य कीमती है सदा से ही। जो अशुभ है वह व्यक्ति को मूल्य नहीं देना चाहता। क्योंकि व्यक्ति ही विद्रोह का तत्व है, इसलिए अशुभ की शक्तियां समूह को मानती हैं, व्यक्ति को नहीं मानतीं। और यह भी जानकर तुम हैरान होगे कि अगर तुम्हें कोई अशुभ काम करना हो, तो व्यक्ति से करवाना बहुत मुश्किल है, समूह से करवाना सदा आसान है। एक अकेले हिन्दू से मस्जिद में आग लगवानी बहुत मुश्किल है, हिन्दुओं की भीड़ से लगवानी बहुत आसान है। एक अकेले मुसलमान से हिन्दू बच्चे की छाती में छुरा घुसवाना बहुत कठिन है, लेकिन मुसलमानों की भीड़ से बिल्कुल आसान है। असल में जितनी बड़ी भीड़ होती है, आत्मा उतनी कम हो जाती है; क्योंकि आत्मा के होने का जो तत्व है वह व्यक्तिगत दायित्व है, 'इन्डीवीजुअल रिसपांसिबिल्टी' है। जब मैं तुम्हारी छाती में छुरा भोंकता हूं तो मेरा अंतःकरण कहता है कि क्या कर रहे हो? लेकिन जब मैं एक भीड़ के साथ चलता हूं, आग लगती है तो मैं सिर्फ भीड़ का हिस्सा होता हूं। मेरा अंतःकरण कभी भी नहीं कहता कि तुम क्या कर रहे हो? मैं कहता हूं लोग कर रहे हैं, हिन्दू कर रहे हैं, मैं तो सिर्फ साथ हूं। कल मुझे कभी व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है।

अशुभ जो है वह सदा ही समाज को आकर्षित करना चाहता है, अशुभ जो है वह भीड़ पर निर्भर करता है और अशुभ चाहता है कि व्यक्ति मिट जाय, भीड़ रह जाय। शुभ व्यक्ति को स्वीकार करता है और चाहता है भीड़ धीरे-धीरे खत्म हो जाय और व्यक्ति रह जाय। व्यक्ति रहेंगे तो संबंध रहेंगे, लेकिन वह भीड़ नहीं होगी, वह समाज होगा। अब इसे भी थोड़ा समझ लेने जैसा है — जहां व्यक्ति हो वहीं समाज हो सकता है और जहां व्यक्ति की सत्ता कम हो जाय वहां सिर्फ भीड़ रहती है, समाज नहीं रहता। समाज और भीड़ में इतना ही फर्क है। व्यक्तियों के अंतरसंबंध का नाम समाज है, लेकिन व्यक्ति होना चाहिए। मैं स्वतंत्र रूप से तुमसे स्वतंत्र व्यक्ति के नाते जब संबंधित होता हूं, तो समाज बनता है। एक जेलखाने में समाज नहीं होता। सिर्फ भीड़ होती है। कैदी भी संबंधित होते हैं, एक दूसरे को देखकर हंसते भी हैं, सिगरेट-बीड़ी भी भेज देते हैं, लेकिन वहां भीड़ होती है, समाज नहीं होता। वे सब वहां इकट्ठे किये गये हैं। अपनी स्वतंत्रता का उनका चुनाव नहीं है। इसलिए स्वतंत्रता, व्यक्ति, व्यक्तित्व, आत्मा, धर्म, अदृश्य और अज्ञात की संभावना जिस पक्ष की ओर प्रबल होगी उसी तरफ शुभ की चेतना होगी। प्रबल कह रहा हूं इसलिए, क्योंकि सिर्फ होना ही इस बात का निर्णायक नहीं होता कि बहुत इस पक्ष की तरफ है और उस पक्ष की तरफ बिल्कुल नहीं है। राम और रावण लड़ते हैं तब भी पक्का नहीं होता है, बहुत साफ नहीं होता है, क्योंकि रावण में भी थोड़ा राम तो होता ही है और राम में थोड़ा रावण तो होता ही है। कौरव में थोड़ा पांडव तो होता ही है, पांडव में भी थोड़ा कौरव होता ही है। ऐसा कोई अच्छे से अच्छा आदमी नहीं है पृथ्वी पर, जिसमें बुरा थोड़ा-सा न हो। और ऐसा बुरा आदमी भी नहीं खोजा जा सकता, जिसमें थोड़ा-सा अच्छा न हो। इसलिए सवाल सदा अनुपात का और प्रबलता का है। स्वतंत्रता, व्यक्ति, आत्मा, धर्म, ये मूल्य हैं जिनकी तरफ शुभ की चेतना होगी।

★

(६ मई, १९७० को बम्बई में हुई एक सत्संग-चर्चा)

अज्ञात में छलांग

संकलन : क्रियानंद

एक महिला : कोई विशेष साधना तो करती नहीं, फिर क्या प्रश्न पूछूं ?

आचार्यजी : साधना करेगी फिर तो पूछ ही नहीं सकेगी।

पुनः प्रश्न : इतनी साधना कर पाऊं कि पूछ ही न सकूं, ऐसा सौभाग्य तो अभी नहीं मिला है ।

आचार्यजी : साधना 'इतनी' और 'उतनी' नहीं होती है, मात्रा होती ही नहीं है ना. यह हमारी बड़ी भ्रांति है। चूंकि हम चीजों की दुनिया से परिचित हैं इसलिए हमेशा क्वांटिटी के हिसाब से सोचते हैं। केवल चीजों की दुनिया से परिचित होने के कारण यह भ्रांति होती है। क्योंकि चीजों में तो क्वांटिटीज हैं और भीतर सिर्फ क्वालिटी है, क्वांटिटी नहीं है। भाव की दुनिया में कोई मात्रा नहीं है। इसलिए ऐसा नहीं कह सकते कि हम किसी को कम प्रेम करते हैं। या तो करते हैं या नहीं करते हैं। कम और ज्यादा प्रेम नहीं हो सकता है। हो ही नहीं सकता है, क्योंकि वहां नापने का उपाय ही नहीं है। या तो हम प्रेम करते हैं या हम नहीं करते हैं। कम प्रेम धोखे की बात है।

ऐसे ही या तो हम साधना में जाते हैं या नहीं जाते हैं। कम साधना धोखे की बात है। लेकिन चूंकि हम वस्तुओं की दुनिया में ही जीते हैं और

हमारा सारा चिंतन वहां से बनता है तो वहां मात्राएं हैं। और उन्हीं मात्राओं को हम अध्यात्म में भी ले आते हैं तब बड़ी भूल हो जाती है। इसी तरह हम सीढ़ियां ले आते हैं, अध्यात्म की दुनिया में। वहां सिर्फ छलांग है। वहां कोई सीढ़ियां नहीं हैं। लेकिन अगर सीढ़ियां न हों तो गुरु और शिष्य का क्या हो? गुरु वह है जो आखिरी सीढ़ी पर खड़ा है और शिष्य वह है जो पहली सीढ़ी पर खड़ा है। अध्यात्म की दुनिया में इसलिए शिष्य और गुरु नहीं हो सकते हैं, बिल्कुल नहीं हो सकते हैं। वह सब हमारी वस्तुओं की दुनिया से ली गई उधार बातें हैं, जहां मजदूर है और मालिक है, जहां शिष्य है और गुरु है, कोई सिखाने वाला है और कोई सीखने वाला है।

अध्यात्म की दुनिया में न कोई सिखाने वाला है, न कोई सीखने वाला है। सीखने की एक छलांग है। 'ए जम्प इन टु लर्निंग'। प्रॉसेस (क्रम) नहीं है लर्निंग (सीखना) वहां। इसलिए क्रम नहीं है, ग्रेड (श्रेणी) नहीं है। लेकिन शोषण का क्या होगा? अगर ग्रेड न हो तो शोषण करना बहुत मुश्किल है। इसलिए हम ग्रेड बना रहे हैं। हम कहते हैं, यह अभी नम्बर एक की सीढ़ी पर है, यह नम्बर दो की सीढ़ी पर है, यह नम्बर तीन की सीढ़ी पर है। मैं नम्बर पांच की सीढ़ी पर हूं।

मैं एक आश्रम में गया। बड़ा मजेदार मामला हुआ वहां। एक संन्यासी हैं। बड़ा आश्रम है उनका और हजारों लोग उनके शिष्य हैं। वे एक बड़े तखत पर बैठे हुए हैं। उनकी बगल में एक छोटा तखत रखा हुआ है। उस पर एक दूसरे संन्यासी बैठे हुए हैं। बाकी संन्यासी नीचे बैठे हुए हैं। मैं गया तो उन्होंने कहा कि आप जानते हैं कि सामने कौन बैठे हुए हैं? मैंने कहा, मैं नहीं जानता। उन्होंने कहा, ये चीफ जस्टिस थे हाईकोर्ट के, अब संन्यासी हो गए हैं। लेकिन, बड़े विनम्र हैं। कभी मेरे साथ तखत पर नहीं बैठते हैं। मैंने कहा, वे तो विनम्र हैं, लेकिन आप कौन हैं, जो आप हमेशा इनके पास बड़े तखत पर ही बैठते हैं? (हंसी.....) अगर वे विनम्र हैं तो आप कौन हैं? और मैंने कहा, ये जो छोटे तखत पर बैठते हैं, उनसे भी नीचे लोग बैठे हुए हैं। ये भी नीचे उनके साथ नहीं बैठ सकते हैं। मैंने कहा, ये आपके मरने की राह देख रहे हैं कि जब आप यह तखत खाली करोगे तब वे इस पर बैठ जाएंगे। तब इनकी चलेगी। चीफ डिसाइपल हैं ये आपके। आप जब मरेंगे तब ये गुरु हो जाएंगे। और जो नीचे बैठे हैं, उनमें जो सबसे ज्यादा कॉम्पिटीटिव (प्रतियोगी) होगा, एम्बिशस (महत्वाकांक्षी)

होगा वह उनके तखत कब्जा कर लेगा। फिर यह गुरु उसके लिए कहेगा कि वह बहुत विनम्र है। विनम्र वह इसी लिए कह रहा है कि वह मेरे अहंकार की तृप्ति करवा रहा है। अगर वह भी उचक कर इसी तखत पर बैठ जाय तो फिर विनम्र नहीं रह जायगा, क्योंकि मेरे अहंकार को चोट पहुंचनी शुरू हो जाएगी। तो फिर, मैंने कहा, आप यह क्यों बताते हैं कि यह आदमी हाईकोर्ट का चीफ जस्टिस था? संन्यासी का मतलब ही है कि जो वह था अब वह नहीं है। यह कोई भी रहा हो, चमार रहा हो, हाईकोर्ट का जस्टिस रहा हो, न रहा हो, इससे कोई वास्ता नहीं है। यह छलांग लगा गया है, अब यह बताने की क्या जरूरत है?

यह भी हम इसलिए बताते हैं कि यह कोई साधारण संन्यासी नहीं है। इसलिए यह न समझें कि यह चमार था, या सड़क साफ करता था, या हाई-कोर्ट का चीफ जस्टिस था। तब तो फिर यह कहीं छोड़ कर गया नहीं है। सब वहीं का वहीं है।

सारी दुनिया में जो अध्यात्म को नुकसान पहुंचा है, वह ग्रेडेशन से पहुंचा है। क्योंकि तब दुनिया में जो सीढ़ियां थीं, पद थे, पदवियां थीं वह सब वहां पहुंच गई हैं। नाम केवल बदल गया है। वहां नए नाम से वह खड़ी हो गई हैं। यहां नेता था, अनुयायी था तो वहां गुरु और शिष्य हो गया है। यहां मालिक था, मजदूर था तो वहां सिखाने वाला और सीखने वाला हो गया है। लेकिन जहां भी वर्ग है वहां शोषण है। वर्ग अर्थात् शोषण। किसी भी भांति का वर्ग होगा तो शोषण होगा। और जहां शोषण नहीं है वहां वर्ग को बनाने का कोई उपाय नहीं है। उसे बनाएंगे कैसे?

तो मेरी अपनी समझ यह है कि शायद जमीन से और तरह के वर्ग मिटने तो बहुत असंभव हैं कम से कम अध्यात्म का वर्ग तो नहीं होना चाहिए। वह एकमात्र पॉसिबिलिटी (संभावना) है जहां हम वर्ग-विहीनता लाएं। लेकिन वहां बहुत सख्त वर्ग है। जितना कि धन की दुनिया में भी सख्त वर्ग नहीं है। वहां बहुत सख्त वर्ग है। हमारी एम्बीशन (महत्वाकांक्षा), हमारी इगो, हमारा अहंकार कितने तरह के रूप लेता है वह कहना बहुत कठिन है। और अहंकार जब भी कोई रूप लेता है तो उसके सोचने का ढंग सदा ही प्रॉसेस में होता है, क्योंकि अहंकार छलांग नहीं लगा सकता है। छलांग में वह मर जाता है। वह एक-एक कदम बढ़ता है। और एक–एक कदम वह इसलिए बढ़ता

है कि जब वह एक कदम को मजबूत कर लेता है तब पीछे का कदम छोड़ता है। छलांग का मतलब यह है कि अगला कदम अनिश्चित है, पड़े न पड़े, गड्ढा हो, एबिस (रसातल) हो। छलांग का मतलब यह है कि अगला कदम निश्चित नहीं किया और कूद गए हैं। बढ़ने का मतलब यह है कि अगला कदम ठीक से निश्चित कर लिया, पैर अच्छी तरह जमा लिया तब पिछला कदम उठाया है। यानी जब हम भविष्य को सुनिश्चित कर लेते हैं तब वर्तमान को छोड़ते हैं। यह तो क्रम से सोचने का ढंग है। छलांग से सोचने का ढंग यह है कि हम वर्तमान को तो छोड़ ही देते हैं और भविष्य को अनिश्चित ही रहने देते हैं।

इतना अभय हो तो ही अध्यात्म में गति है। और एक ही कदम निश्चित हो सकता है ज्यादा से ज्यादा। इसलिए आगे की सीढ़ी जब हम बिल्कुल पक्की बना लेते हैं तब हम उस पर चढ़ जाते हैं, पीछे की सीढ़ी छोड़कर। यह छोड़ना नहीं है। यह सिर्फ बढ़ना है। इस सीढ़ी में पिछली सीढ़ी इम्प्लाइड (समाहित) है। एक आदमी के पास दस हजार रुपए हैं। वह दस हजार छोड़ता है, पचास हजार पा लेता है। दस हजार वह छोड़ता नहीं है। पचास हजार में ४० हजार+१० हजार जुड़े हुए हैं। वह सिर्फ ४० हजार पाता है, १० हजार छोड़ता नहीं है। पिछली सीढ़ी हमेशा अगली सीढ़ी में समा लेता है। तो अहंकार ऐसा चलता है जैसा सांप चलता है। आगे जब जाता है तब अपने सारे शरीर को सिकोड़ कर आगे ले आता है। तो अहंकार कभी कुछ नहीं छोड़ता है। अपने सारे अतीत को सदा सिकोड़ कर आगे खींचता रहता है। इसलिए अहंकार बेसीकली (मूलतः) कभी क्रांति से नहीं गुजरता है। वह वही का वही रहता है। सिर्फ मॉडिफाइड होता है। नई नई सीढ़ियों पर नए नए रंग लेता चला जाता है। और हर नई सीढ़ी पर नई अकड़ उसे उपलब्ध हो जाती है। वह आनंद से भर जाता है।

अध्यात्म की भी ऐसी अकड़ है। लेकिन ऐसा अध्यात्म अध्यात्म ही नहीं रह सकता है। मेरी दृष्टि में अध्यात्म सदा ही एक छलांग है, एक जम्प है, जम्प इन टु द अननोन। और अननोन (अज्ञात) पर हम ग्रेडेशंस (श्रेणियां) नहीं कर सकते हैं, नहीं तो वह नोन (ज्ञात) हो जाएगा। अननोन का हम नक्शा नहीं बना सकते हैं, नहीं तो वह नोन हो जाएगा। अननोन में हम यह भी नहीं कह सकते कि कुछ मिलेगा, कि खोएगा। अगर इतना भी पक्का हो जाय तो फिर वह अननोन नहीं रह जाएगा। तो नोन से अननोन में, ज्ञात से

अज्ञात में जो छलांग है वह हमारा यह चित्त जो क्वांटिटी, ग्रेडेशन, ग्रेजुअलनेस, सीढ़ियां, क्रम--कम और ज्यादा--इस भाषा में सोचता है, कभी नहीं लगाता है। उससे बहुत सावधान रहने की जरूरत है।

इसलिए जब तक हम नहीं हैं, तब तक यह जानना उचित है कि साधक नहीं हैं। कम साधक जानना खतरनाक है। मैं आपको प्रेम नहीं करता तो यह जानना बहुत ही ठीक है कि मैं प्रेम नहीं करता। कम से कम यह सच तो है। और न प्रेम करने की भी अपनी पीड़ा है जो मुझे पकड़ेगी, जो मुझे काटेगी, दिन रात कांटे की तरह चुभेगी कि मैं प्रेम नहीं करता। मैंने प्रेम किया ही नहीं है। यह इतना घना होता जाएगा कि मुझे प्रेम की छलांग लेनी पड़ेगी एक दिन। यह चुमन इतनी गहरी हो जाएगी कि जिस जमीन पर मैं खड़ा हूं वह आग हो जाएगी। मुझे उससे छलांग लगानी पड़ेगी। क्योंकि वहां खड़ा रहना असंभव हो जाएगा। लेकिन कनिंग है हमारा मन, वह कहता है, नहीं। ऐसा नहीं है कि मैं प्रेम नहीं करता हूं, थोड़ा करता हूं। थोड़ा और प्रयास करूंगा, थोड़ा और ज्यादा करूंगा। इस भांति जमीन कभी इतनी गरम नहीं हो पाती, थोड़े की वजह से, कि मुझे ऐसा लगे कि छलांग लगाऊं। मैं कहता हूं कि थोड़ा तो करता ही हूं, थोड़ा और बढ़ा लूंगा, थोड़ा और बढ़ा लूंगा। इसलिए नहीं करने की पीड़ा कभी भी बहुत स्पष्ट नहीं हो पाती है।

अब एक आदमी माला फेर रहा है तो कहता है कि थोड़ी साधना करते हैं। इस थोड़ी साधना करने में वह सदा अपने को साधना से बचा लेता है, क्योंकि वह कहेगा ऐसा थोड़े ही है कि हम नहीं कर रहे हैं, थोड़ा हम कर रहे हैं। एक आदमी मंत्र-जाप कर रहा है। वह कहता है कि थोड़ा हम कर रहे हैं। थोड़ा-थोड़ा कर रहे हैं। ऐसा नहीं कि हम खाली बैठे हैं, कि हम बेकार बैठे हैं। काम जारी है। ऐसे वह अपने मन को समझा रहा है कि कुछ चल रहा है, कुछ चल रहा है, कुछ चल रहा है। ऐसे काम नहीं होगा। यह धोखा है, डिसेप्शन है बहुत गहरे में।

एक दूसरे प्रश्नकर्ता : आचार्यजी, छलांग में संभव है कि स्मृति नष्ट हो जाय, लेकिन टेकनिकल वर्डस और टेकनिकल एज्युकेशन की बातें तो याद रहेंगी ना?

आचार्यजी : दोनों बातें ठीक हैं। असल बात यह है कि स्मृति के मिटाने का सवाल नहीं है। स्मृति से हमारा जो आइडेंटीफिकेशन है उसे तोड़ने का

सवाल है। मैं स्मृति ही नहीं हूं, यह जानने का सवाल है। यानी जो मैंने याद कर लिया, जान लिया, पहचान लिया, पढ़ लिया, सुन लिया, समझ लिया वही मैं नहीं हूं। मैं उससे बहुत पृथक हूं। और यह तो मेरा एक्युम्युलेशन है। जैसे मैंने धन इकट्ठा किया है, ऐसे ही मैंने ज्ञान भी इकट्ठा किया है। वह तिजोरी में बंद है, यह स्मृति में बंद है। यह भी एक तिजोरी है। लेकिन मैं तिजोरी ही नहीं हूं। धनपति भी इस भूल में पड़ जाता है। वह तिजोरी हो जाता है। और ज्ञानी भी इस भूल में पड़ जाता है। वह भी तिजोरी हो जाता है। उसे लगता है यही मैं हूं, मेरा जानना ही मैं हूं। नहीं, मेरा जानना ही मैं नहीं हूं। जानना मेरे अस्तित्व की एक प्रक्रिया है। मैं बहुत ज्यादा हूं जानने से। और जो मैं जानता हूं उससे बहुत ज्यादा जानने की मेरी अनंत संभावना है।

तो स्मृति से तुम्हारी दूरी भर बढ़ेगी, स्मृति मिट नहीं जाएगी। यह तुम्हारी टेकनिकल नॉलेज में कोई फर्क नहीं आने वाला है; जम्प में बल्कि तुम्हारी टेकनिकल नॉलेज ज्यादा स्पष्ट हो जाएगी। क्योंकि जितना तुम अपनी स्मृति से दूर हो, उतनी ही क्लेरिटी (स्पष्टता) है। जितना स्मृति के पास हो उतनी ही क्लेरिटी कम है, वह धुंधली हो जाती है। और जब तुम स्मृति से आइडेंटीफाइड (तादात्म्य में) हो जाते हो तब तो तुम बहुत दिक्कत में पड़ जाते हो। स्मृति तो एक मैकेनिकल डिव्हाइस (यांत्रिक उपकरण) है। वह टेप रिकार्डर की तरह है। तुम टेप रिकार्डर नहीं हो। लेकिन कोई आदमी टेप रिकार्डर को पास रखे रखे समझे कि मैं टेप रिकार्डर हो गया तो वह मुश्किल में पड़ जाएगा। कल टेप रिकार्डर टूट जाएगा तो वह समझेगा कि मैं टूट गया। कल टेप रिकार्डर बंद हो जाय तो वह समझेगा कि मैं बंद हो गया। और कल टेप रिकार्डर बंद न हो, बोले ही चला जाय तो वह कहेगा, मैं क्या कर सकता हूं मैं तो यही हूं। तो वह बहुत बुरी तरह का बंधन है ना, टेप रिकार्डर। स्मृति भी टेप रिकार्डर है जो बिल्कुल प्राकृतिक ढंग का है। और आज नहीं कल हम उसके साथ टेप रिकार्डर जैसा काम कर सकेंगे। करना शुरू कर दिया है। माइंड-वाश भी हो सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं रह गई है।

यह जो स्मृति है, इससे तुम भिन्न हो। यह छलांग लगाते वक्त मिट नहीं जाएगी। सिर्फ छलांग में तुम्हारा फासला बढ़ेगा। तुम साफ देख सकोगे कि यंत्र क्या है और चेतना क्या है। तो कॉन्शसनेस (चेतना) और मेमोरी (स्मृति) अलग तुम्हें साफ दिखाई पड़ने लगेंगी। और तब तुम्हारी कॉन्शसनेस

में एक व्हर्जिनिटी आएगी, एक कुंवारापन आएगा जो कि स्मृति के द्वारा करॅप्ट नहीं किया गया है। असल में स्मृति जो है बहुत करॅप्ट करती है। इसको समझ लेना उचित है।

हमारी जो स्मृति है वह हमारे साथ व्यभिचार है। तुम कल मझे मिले और कल तुमने मुझे गाली दी। आज जब तुम सुबह मुझे दिखते हो, मैं एक-दम करॅप्ट हो जाता हूं। मेरी स्मृति कहती है कि यह वह आदमी आ रहा है जिसने गाली दी थी। अब मैं तुम्हें देख ही नहीं पाता हूं। वह कल का आदमी ही मैं देखता रहता हूं कि वह आदमी आ रहा है जिसने कल मुझे गाली दी थी। अब मैं तैयार हो रहा हूं कि तुम गाली दोगे। मैं जवाब तैयार कर रहा हूं। कल जवाब मैं नहीं दे पाया था, क्योंकि तुमने अचानक गाली दी थी। आज मैं बिल्कुल तैयार रहूंगा कि तुम बोलो और मैं जवाब दूं। और जब तुम मुझे गाली देने के लिए तैयार पाओगे तो बहुत संभावना है कि मैं तुम में से गाली भी पैदा करवा लूं। क्योंकि मैं सिचुएशन (स्थिति) पूरी तैयार कर रहा हूं। और जब तुम में से गाली पैदा हो जाय तो मैं कहूंगा कि बिल्कुल ठीक। मैं पहले से तैयार था, वह ठीक ही किया था। तो स्मति ने करॅप्ट (शोषित) किया। अतीत से बांध दिया उसने मुझे। जैसे कल की धूल तुम्हारे घर में पड़ी हो और आज सुबह सफाई न हो पाई हो, ऐसा हो गया। और यह धूल अनंत इकट्ठी हो जाती है। इसलिए तुम कभी अन-करॅप्टेड (अ-शोषित), व्हर्जिन नहीं हो कि तुम सीधे कुंवारे खड़े हो जाओ। कुंवारे की धारणा ही यही है।

कुंवारेपन से ज्यादा पवित्र कुछ भी नहीं है। लेकिन कुंवारेपन का जो मतलब हमने ले लिया है वह बहुत अजीब है। उससे कोई वास्ता नहीं है। कुंवारेपन का मतलब यह है कि कल ने करॅप्ट नहीं किया है जिसे। जिसका अतीत जिसके भविष्य को, वर्तमान को करॅप्ट नहीं करता है। जिसका अतीत बीच में नहीं आता है। जो रोज ताजा खड़ा हो जाता है। अतीत एक कोने पर स्मृति में होता है, लेकिन उसके ऊपर नहीं छाया होता है। और वह रोज नए को देखने में सक्षम है। तो आज तुम आ रहे हो तो मैं तुम्हीं को देखूंगा। उसको नहीं जिसने कल मुझे गाली दी थी। क्योंकि वह अब कहां है? गंगा का बहुत पानी बह गया है। अब पता नहीं तुम क्षमा मांगने आ रहे हो? और मैं सोच रहा हूं कि तुम वही आदमी हो, जो कल गाली दे

गया है। पता नहीं तुम चौबीस घंटे में क्या हो गए हो? क्योंकि चौबीस घंटे में अपना ही क्या भरोसा कि क्या हो जाएंगे, तो दूसरे का क्या भरोसा है!

तो स्मृति जो है वह करप्टिंग एलिमेण्ट (शोषक तत्व) है। अगर तुमने उससे अपने को आइडेण्टीफाई किया तो तुम मरे। बस, आखीर में तुम पागल हो जाओगे। अगर उसके करॅप्शन में पूरे पड़ गए तो पागल हो जाओगे। अगर तुम उससे पूरे बाहर हो गए और स्मृति तुम्हारा सिर्फ एक मैकेनिकल डिव्हाइस रही जो तुम्हें काम देती है कि मकान कहां है, दुकान कहां है, जो पड़ा था वह कहां है। वह सिर्फ एक मैकेनिकल डिव्हाइस है जिसका तुम उपयोग कर लेते हो। जैसे आज नहीं कल हम छोटे कम्प्यूटर बना ही लेंगे। वह कम्प्यूटर हम जेब में डाल लेंगे। आदमी की स्मृति को इतना परेशान करने की जरूरत नहीं रहेगी। जरूरत नहीं है कि तुम १० फोन नम्बर याद रखो। जैसा कि डायरी में तुम फीड कर (भर) देते हो कि यह मित्रों के फोन नम्बर हैं। वैसे ही तुम कम्प्यूटर में फीड कर दोगे कि ये मेरे हजार मित्रों के फोन नम्बर हैं। और फिर तुम पूछते हो कि राम का फोन नम्बर क्या है? तो कम्प्यूटर तुमसे कह देता है कि इतना है। तो तुम्हें अपनी स्मृति में रखने की जरूरत नहीं रह जाएगी। तुम अपना कम्प्यूटर साथ रखोगे और वह तुम्हारा काम कर देगा। अभी भी हमारा इनर मैकेनिज्म कम्प्यूटर का ही है। उसको भी हमें फीड करना पड़ता है। इसलिए हमको कहना पड़ता है कि राम का फोन नम्बर यह, राम का फोन नम्बर यह, दस दफे कह लेते हैं तो फीड हो जाता है। उसकी रेखा बन जाती है। लेकिन यह तुम नहीं हो। तुम सदा इसके बाहर हो। तुम वह हो जिसने यह किया, तुम वह हो जो याद करेगा, तुम वह हो जो भूल सकता है। वह कॉन्शसनेस अलग धारा है।

तो जो छलांग लगेगी उसमें यह चेतना तुम्हारी अलग साफ हो जाएगी। और तब तुम व्हर्जिन हो जाओगे।

प्रश्न: आचार्यजी, मैं अपनी पूरी स्मृति खो चुका हूं। क्या उसे पुनः वापिस पाना संभव है?

आचार्यजी: अगर तुम जो कह रहे हो, वह ठीक कह रहे हो, तब तुमने कुछ नहीं खोया हुआ है। समझे ना? अब एक आदमी कह रहा है कि मैंने अपनी स्मृति पूरी खो दी है तो वह पक्का सबूत दे रहा है कि उसने कुछ नहीं खोया हुआ है। उसको सब मालूम है कि क्या-क्या खो दिया है।

सच पूछो तो कुछ भी नहीं खोया है उसने। अगर एक आदमी की स्मृति खो जाय तो बताने वाला कौन आएगा यह कहने कि भई, मेरी स्मति खो गई है। समझे न तुम?

प्रश्नकर्ता: एक मनोविश्लेषक डाक्टर से पूछने पर उन्होंने कहा था कि मुझे आत्मा-परमात्मा के विषय की किताबें पढ़ना छोड़ देना चाहिए तथा उसकी लगन छोड़ देनी चाहिए तो मेरी स्मृति पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। अन्यथा मेरा पोस्ट एण्ड टेलिग्राफ का काम भी न हो पाएगा। वह हो भी नहीं पा रहा है। मेरी रुचि बिल्कुल नहीं लगती उसमें। अब मैं क्या करूं?

आचार्यजी: मैं समझा तुम्हारी बात। परमात्मा को थोड़े दिन के लिए छोड़ो। छोड़ना इसलिए कि जिस परमात्मा को हम पकड़ और छोड़ सकते हैं, वह परमात्मा नहीं हो सकता है। समझे ना? वह हमारी स्मृति ही है जो हमने किताबों में पढ़ी है, सुनी है। उस परमात्मा को हम पकड़े हुए हैं। वह झंझट डालेगा। वह भी करॅप्ट करेगा तुमको। समझे ना? उसको छोड़ो। परमात्मा मैं उसी पवित्रता को कहता हूं जो उस इनोसेंस से आती है जो स्मृति के द्वारा चेतना को शुद्ध रखने का, मुक्त रखने का आधार है। परमात्मा का मतलब यह है कि पवित्रतम। परमात्मा का कोई व्यक्ति से मतलब नहीं है। इसे जरा ठीक से समझ लो। परमात्मा पवित्र है ऐसा नहीं, जो पवित्र है वह परमात्मा है ऐसा।

तो वह जो प्योरिटी है उसके लिए तुम्हें स्मृति रखने की जरूरत नहीं है। वही तो दिक्कत है। उसको छोड़ो। उसको याद रखने की जरूरत नहीं है। और अध्यात्म और गैर-अध्यात्म, और यह अलग और वह अलग यह भी छोड़ो। इससे कोई लेना-देना नहीं है। आनंद से जियो, शांति से जियो और अतीत तुम्हारे भविष्य और वर्तमान को नष्ट न कर सके इसके प्रति सचेत रहो। फिर पोस्ट टेलिग्राफ और परमात्मा में बहुत फर्क नहीं है। तो तुम्हारा जो पोस्ट और टेलिग्राफ का इन्जीनियरिंग है उसमें और परमात्मा में कोई फर्क नहीं है।

.....यह तो हम आग्रह ही न करें कि क्या क्या हो। जो जैसा है उसे स्वीकार करके हमें शांत रहना चाहिए।

एक दूसरे प्रश्नकर्ता: हम किताबों में पढ़ते हैं कि ध्यान में ऐसी ऐसी प्रतिक्रियाएं होती हैं तो क्या इन सबके पढ़ने से हमारी कन्डीशनिंग नहीं हो

जाती है, जो साधना में बहुत बाधा लाती है?

आचार्यजी: उसमें बाधा ला सकती है। और साधक भी बन सकती है। यह आपके एटिटचूट (दृष्टिकोण) पर निर्भर है कि आप उसको कैसे लेते हैं। असल में इस जगत में बाधक और साधक दो चीजें नहीं हैं। एक रास्ते पर एक पत्थर पड़ा है। वह बाधा भी हो सकता है और सीढ़ी भी बन सकता है। वह पार जाने से रोक भी सकता है और पार जाने में सहारा भी बन सकता है। तो यह सवाल बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि क्या है बाधा और क्या है साधक? बड़ा सवाल यह है कि कैसे आप उसे लेते हैं। अब जैसे आपके भीतर एक आनंदपूर्ण सुगंध आनी शुरू हुई। यह सिर्फ एक तथ्य है कि आपने बाहर की सुगंधें जानी थीं, अब आपने भीतर की भी सुगंध जानी। वह भी बाहर के ही अनंत अनंत जन्मों का संचित इसेंस है। वह भी भीतर नहीं है। आपने भीतर प्रकाश जाना वह भी बाहर के प्रकाश के अनंत अनंत अनुभवों का संचित कोष है। जो भीतर बिल्कुल एटॉमिक फोर्स (परमाणु-शक्ति)की तरह इकट्ठा हो गया है। जब वह भीतर प्रकट होगा तो सूरज फीका मालूम पड़ेगा। अगर आपने भीतर संगीत सुना तो वह भी अनंत अनंत संगीत, अनंत अनंत ध्वनियों का इकट्ठा सारभूत परफ्यूम (सुगंध) है। वह भीतर प्रकट होती है।

इतना तो तय हुआ कि जब वह प्रकट होती है तब आप बाहर से उस जगह गए जहां बाहर के अनुभव संचित होते हैं। वह भीतर है जगह। तो आप इनवर्ड गये यह तो सबूत है इस बात का। तो जब भीतर सुगंध आए, प्रकाश आए, और भीतर और तरह के अनुभव आएं, यह सब इस बात के सबूत हैं कि आप भीतर गए। आपने स्थूल के जगत से सूक्ष्म में प्रवेश किया। फ्राम द ग्रॉस टु द सट्ल। लेकिन अभी अननोन (अज्ञात) में नहीं गए हैं आप, क्योंकि अननोन को तो रिकॅगनाइज (पहचान) ही नहीं कर सकते हैं आप। आप कह रहे हैं कि यह सुगंध है, तो यह नोन की ही दुनिया है। जो सुगंध आप जानते थे उससे इसका तालमेल है। रिकॅगनीशन संभव हो सका है। आप कहते हैं यह सुगंध है, आप कहते हैं यह प्रकाश है। तो जो प्रकाश आप जानते रहे थे बाहर उस प्रकाश से इसका तालमेल है, नहीं तो इसको आप प्रकाश कैसे कहेंगे? तो यह अननोन नहीं है। है तो यह नोन ही। लेकिन जिसे आपने बाहर जाना था उसे अब आपने भीतर जाना है। जैसे हमने चांद को देखा था आकाश में, अब हमने झील की छाया में देखा चांद को। बस इतना ही

फर्क है। भीतर आपको जो बाहर से छाया पड़ी है, रिफ्लेक्शन हुआ है वहां आपने पकड़ा है इसको। डायमेंशन (आयाम) तो बदला, लेकिन स्थूल ही सूक्ष्म हुआ। है। लेकिन सूक्ष्म भी स्थूल का ही रूप है। बहुत सूक्ष्म रूप है, लेकिन स्थूल का ही रूप है।

इसलिए बहुत ठीक से समझें तो भीतर भी बाहर का ही मॉडिफिकेशन (दूसरा रूप) है। जिसको हम बाहर कहते हैं वह दरवाजे के बाहर है, वह बाहर है। दरवाजे के जो भीतर है, वह भीतर है। उसमें ये कहां अलग होते हैं? किस जगह बाहर अलग होता है और भीतर अलग होता है। बाहर भीतर घुस आता है, भीतर बाहर निकल जाता है। यह सब मिले-जुले हैं। वही सांस भीतर जाती है तब आप कहते हैं कि भीतर जा रही है। वही सांस बाहर जाती है तब आप कहते हैं कि बाहर जा रही है। सांस वही है। उसके आधे को भीतर कह देते हैं और आधे को बाहर कह देते हैं। बाहर और भीतर एक ही चीज के दो हिस्से हैं। सूक्ष्म और स्थूल भी एक ही चीज के हिस्से हैं। और यह सब ज्ञात ही हैं।

और बाहर के ज्ञात से छलांग लगाना मुश्किल है, भीतर के ज्ञात से छलांग लगाना अज्ञात में आसान है। बस इसी अर्थों में वह सूक्ष्म है। तो बाधा बन जाएगी अगर आप इसमें रसलीन हो गए और कहने लगे, पा लिया, तो बाधा बन जाएगी। अभी कुछ भी तो नहीं पाया है। परफ्यूम ही पाई है ना। करोड़ों-करोड़ों गुनी अच्छी परफ्यूम पाई है जो बाजार में मिल सकती है। लेकिन है तो परफ्यूम ही न। अब आज नहीं कल वैज्ञानिक उसको भी बना लेगा। ऐसी कोई कठिनाई तो नहीं है। परफ्यूम ही पाई न! आपने संगीत सुना भीतर, कुछ वीणा बजती सुनी जैसी आपने कभी नहीं सुनी थी। कोई रविशंकर नहीं बजा सकता, ऐसी सुनी। लेकिन कोई रविशंकर कभी बजा लेगा। जो सुनी जा सकती है वह कभी न कभी बजाई भी जा सकती है, क्योंकि सुनना और बजाना एक ही प्रक्रिया के दो हिस्से हैं। तो जो प्रकाश आपने भीतर देखा है वह बाहर भी देखा जा सकेगा। कभी विज्ञान इंतजाम कर लेगा। चलो हम आपको भीतरी प्रकाश भी दिखाए देते हैं। एल० एस० डी० और मैस्केलीन से वही सब भीतरी प्रकाश और ध्वनियां दिखाई-सुनाई पड़ रही हैं। वह वैज्ञानिक इंतजाम है।

इसको आध्यात्मिक उपलब्धि समझ लेने की भूल में पड़ें तो बाधा हो जाएगी।

अगर समझा कि मिल गया अध्यात्म, हमको तो सुगंध आने लगी, नाद आने लगा, प्रकाश दिखाई पड़ने लगा, मिल गया अब — तो गए! इसलिए जो पत्थर सीढ़ी बनता वह अब दीवार बन जाएगी। अब आप अटक गए। अब आप बुरी तरह अटके, क्योंकि स्थूल से तो आपके छुटकारे की आसानी थी, क्योंकि उसमें धोखे में पड़ना बहुत मुश्किल था कि यह अध्यात्म है। लेकिन इसमें धोखे में पड़ना आसान है। अच्छा, उसमें कलेक्टिव मामला था। उसमें और लोग भी थे जो कहते कि नहीं, कैसा अध्यात्म यह तो मकान है। कैसा अध्यात्म, यह तो सितार की आवाज है। कैसा अध्यात्म, यह तो बिजली का प्रकाश है। कैसा अध्यात्म, यह तो फूल की सुगंध है। दूसरे लोग भी कहते। भीतर की अनुभूतियों में आप बिल्कुल अकेले रह जाते हैं। अब दूसरा कोई नहीं रहा। इसलिए अब अपने पर भरोसा कर लेना बहुत आसान है। खुद को धोखा देना बहुत आसान है। क्योंकि 'क्रिटिक' (आलोचक) कोई नहीं है अब वहां। अब आप अकेले ही हैं। इस ध्वनि को आप ही सुनते हैं, कोई दूसरा सुनता नहीं है। इस प्रकाश को आप ही देखते हैं, दूसरा कोई देखता नहीं है।

तो अपने आपको अब 'हेल्युसिनेट' (भ्रमित) कर लेना बहुत आसान है। अब आप कह सकते हैं, मिल गया। 'मिल गया' कहा तो नुकसान हो जाएगा। जब तक मिल गया कहने की वृत्ति आए तब तक खतरा है। नहीं, अभी और छलांग लेनी पड़ेगी। अभी आप स्थूल से सूक्ष्म में आए, बाहर से भीतर आए, लेकिन अभी अज्ञात में नहीं चले गए हैं। जिस दिन अज्ञात आएगा उसको रिकॅगनाइज (पहचान) ही नहीं कर सकेंगे आप। क्योंकि अज्ञात को रिकॅगनाइज कैसे करिएगा आप? आप न कह सकेंगे कि यह सुगंध है, न कह सकेंगे प्रकाश है, न कह सकेंगे परमात्मा है, न कह सकेंगे आत्मा है, न कह सकेंगे मोक्ष है। न कह सकेंगे निर्वाण है। कुछ न कह सकेंगे। बस, इतना ही कह सकेंगे कि नहीं कह सकता हूं। उपाय नहीं है। पहचान नहीं पाता हूं। आया है कुछ, हुआ है कुछ, लेकिन अब शब्द देने के लिए कोई उपाय भी नहीं है। इतना भी नहीं कह सकता कि मैंने पा लिया है, क्योंकि मैं भी वहां नहीं टिकता हूं। तब तो अज्ञात में छलांग हो गई। वह अतीन्द्रिय हो गई। क्योंकि हमारा सब ज्ञात इंद्रियों का अनुभव है। वहां कुछ भी न रह जाएगा। न कोई वीणा बजेगी, न कोई सुगंध आएगी, न कोई प्रकाश रह जाएगा। वहां कुछ भी न रह जाएगा, ऑब्जेक्ट की तरह कि यह हो रहा है। और जहां ऑब्जेक्ट

(विषय) नहीं रह जाता वहां सब्जेक्ट (विषयी) भी खो जाता है, क्योंकि उसके बचने के लिए कोई उपाय नहीं है। जब तक कोई चीज हमें दिखाई पड़ती है तब तक मैं भी रहता हूं क्यों कि मुझे दिखाई पड़ रही है। सुगंध है, तो मैं भी मौजूद हूं। सुगंध है, मुझे आ रही है। प्रकाश है, मुझे दिखाई पड़ रहा है। जब तक ऑब्जेक्ट है कोई भी तब तक मैं भी हूं। जब ऑब्जेक्टलेस (निर्विषय) स्थिति होती है तब मैं कहां टिकूंगा? सहारा कहां रहेगा कि कहूं, मैं भी हूं। क्योंकि ऐसा मैं कहां टिकेगा जिसे सुगंध नहीं आती, प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता, जिसे कुछ दर्शन नहीं होता, अनुभव नहीं होता, कुछ नहीं होता।

इसलिए 'आध्यात्मिक-अनुभव' शब्द बिल्कुल ही गलत है। जब तक 'अनुभव' है तब तक अध्यात्म नहीं है। और जब अध्यात्म आता है तब अनुभव नहीं है, क्योंकि अनुभव हमेशा ऑब्जेक्टिव (विषयगत) है। वह सब्जेक्ट-ऑब्जेक्ट की रिलेशनशिप है (वह विषय-विषयी के बीच सम्बन्ध है)। इसलिए वहां वह यह भी नहीं कह सकेगा कि अनुभव हुआ है। उपनिषद् कहते हैं कि जो कहे कि मैंने जान लिया, जानना कि उसने नहीं जाना है। यह गवाही हो जाएगी, कि उसने अभी नहीं जाना है।

प्रश्नकर्ता: मैं कह रहा था कि हमने ध्यान में जाने के पहले ही यह किताबों में पढ़ लिया कि यह-यह अनुभव होते हैं। तो क्या उनकी पूर्व धारणा करने से वास्तविक अनुभव में बाधा नहीं पड़ेगी?

आचार्यजी: वे बाधा भी डाल सकते हैं और साधक भी हो सकते हैं। असल में ऐसी कोई बाधा नहीं हो सकती जो साधक न बन सके। और ऐसा कोई साधन नहीं हो सकता जो बाधा न बन सके। 'एटिट्यूट' की बात है। चीज की बात नहीं है, दृष्टिकोण की बात है। वे बाधक नहीं बनेंगी, अगर आप जानते हैं कि सुना है, पढ़ा है, लिखा है इसलिए हो रहा है। तब तो बाधक नहीं बनती हैं। हम प्रोजेक्ट कर रहे हैं, इसलिए हो रहा है तब तो बाधक नहीं बनतीं। पर अगर आपने कहा कि नहीं, सुना है, पढ़ा है, लिखा है वह नहीं हो रहा है। यह तो अनुभव ही हो रहा है, तब फिर बाधक बन जाएंगी। वह गहरे में हमारी एटिट्यूट की बात है।

तो सदा इसमें सजग होने की जरूरत है कि जो हो रहा है वह मेरे सुने, लिखे, पढ़े, जाने हुए का संचित रूप तो नहीं है। इतना ख्याल में बना रहे तो एक दिन हो जाएगा वह जो सुना, लिखा, पढ़ा हुआ नहीं है। अभी

तो सभी सुना, लिखा, पढ़ा हुआ है। अभी तो कोई उपाय भी नहीं है, जब तक अनुभव न हो 'उसका' (अज्ञात का) तब तक सभी सुना, पढ़ा, लिखा हुआ है।

पर कठिनाई यह है कि ऐसी कोई चीज नहीं है जो दोनों एक साथ न हो सके। और तब अंततः चीज नहीं है महत्त्वपूर्ण, हमारा दृष्टिकोण है महत्त्वपूर्ण।

तो मैं यह कहता हूं कि हर चीज को साधन बनाओ। और हर चीज को बाधा समझ लो तो कठिनाई में पड़ जाएंगे आप। वह भी उपाय है। हर चीज को बाधा ही समझ लो तो भी छलांग हो जाएगी। प्रत्येक चीज बाधा है, समझ में आ जाय कि सब चीज बाधा है तो सब चीजें छोड़ दो। वह छूटता नहीं है। निगेटिव मैथड (निषेधात्मक विधि) तो वही है कि सब बाधा है। यह भी बाधा है, यह भी बाधा है, वह भी बाधा है। नेति-नेति, यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं। लेकिन वह छूटता नहीं है। क्योंकि हम कहते हैं कि यह सीखा हुआ, पढ़ा हुआ, सुना हुआ छूटे कैसे? तो फिर दूसरा रास्ता यह है कि प्रत्येक को साधन बना लो कि हम इस पर भी पैर रखेंगे, इस पर भी पैर रखेंगे। लेकिन कहीं रुकेंगे नहीं। छलांग सबसे लगा लेंगे।

दोनों उपाय हो सकते हैं। इसलिए दुनिया में दो ही साधना पथ हैं। एक पॉजिटिव (विधायक) और एक निगेटिव (निषेधात्मक) और तो कुछ नहीं है। दो ही साधना पथ हैं। एक जो प्रत्येक चीज को साधन बना लेगा और एक जो प्रत्येक चीज को बाधा समझ लेगा। दोनों से काम हो जाएगा, क्योंकि दोनों टोटल (पूर्ण) हो जाएंगे। अगर प्रत्येक चीज बाधा है तो भी आप टोटल हो गए। मामला खतम हो गया। अगर प्रत्येक चीज साधन है तो भी टोटल हो गए। या तो निगेटिविटी (निषेध) में टोटल हो जायं कि कोई साधन ही नहीं है, तो भी छलांग लग जाएगी। और या पॉजिटिविटी में टोटल हो जायं कि सब चीज साधन है।

अब जैसे तंत्र है। पॉजिटिव है। वह कहता है कि सब चीज साधन है। गांजा भी, अफीम भी, स्त्री भी, भोग भी, सब चीज साधन है। वह कहता है कि बाधा कुछ है ही नहीं। इसलिए तंत्र यह नहीं कहेगा कि यह बुरा है। वह कहता है कि बुरा कुछ है ही नहीं। जो भी है सब साधन है। तंत्र को पचाना भी बहुत मुश्किल है। क्योंकि हम कहेंगे, कुछ तो बुरा है, कुछ अच्छा है। इसलिए हम टोटल नहीं हो पाते हैं। वह तांत्रिक टोटल हो जाता है। वह कहता है सब ठीक है। वह गांजा भी पीता है तो कहता है कि जय

भोले (हंसी.....)। वह गांजे पर खड़े होकर भोले पर छलांग लगा जाता है। वह कहता है, जय भोले। अब गांजा और भोले का कोई लेना-देना है? गांजे का भगवान के स्मरण से क्या सम्बन्ध? लेकिन वह कहता है कि तेरा ही है, यह भी। हम इस पर भी राजी हैं। वह कहता है कि हम इस पर भी राजी हैं। वह सब स्वीकार कर लेता है। अस्वीकार ही नहीं करता है। पर हर चीज से कूदता चला जाता है। वह कहता है कि कुछ बाधा ही नहीं है तो हम किस चीज से डरें। तंत्र को डराया नहीं जा सकता है। उसे डराने का कोई उपाय नहीं है। आप जिससे डराओगे, वह उसी को पी जाएगा। इसलिए शंकर उसके केंद्र पर आ गए। वह जहर भी पी जाएंगे। वह भी साधन है। शंकर जैसा पॉजिटिव व्यक्तित्व नहीं हुआ है जगत में। क्योंकि उनके लिए किसी चीज में बाधा ही नहीं है कुछ।

दूसरा है निगेटिव मैथड। जैसे बुद्ध का शून्य या कृष्णमूर्ति की बात। वह निगेटिव मैथड है। वह कहता है सब बाधा है। सब छोड़ो। कोई चीज साधन नहीं है। साधन है ही नहीं। इसलिए तुम साधन में उतरना ही मत। तो साधन पर जाना ही मत। सीढ़ी पर पैर ही मत रखना। पैर ही क्यों रखते हैं जब छलांग लगानी है? छलांग ही लगानी है, सीढ़ी से उतर ही जाना है, फिर चढ़ते किस लिए हो? चढ़ो ही मत। तुम किसी सीढ़ी पर कभी जाओ हो मत। किसी विधि, किसी मैथड को कभी पकड़ो ही मत। तो छलांग लगी ही हुई है। जब तुम पकड़ोगे ही नहीं, सीढ़ी पर पैर ही न रखोगे, कहीं चढ़ोगे हो नहीं तो कहां जाओगे? तो तुम शून्य में चले जाओगे।

तो यह दो ही आयाम हैं। और इन दोनों में बड़ा संघर्ष रहा है। वह संघर्ष नासमझी से भरा हुआ है। इन दोनों में भारी संघर्ष है। ये दोनों समझते हैं कि दुश्मन हैं। ये दोनों एक दूसरे के भारी दुश्मन हैं। मेरी तकलीफ यह है कि मुझे दोनों ठीक हैं। इसलिए मेरी बात आपको कई दफे दिक्कत की हो जाती है। इसलिए दिक्कत की हो जाती है क्योंकि मुझे दोनों ही ठीक हैं। हां, कभी मैं ऐसा कह देता हूं कि यह मेरी विधि है। कभी मैं कह देता हूं कि कोई विधि नहीं है। तो आपको कठिनाई हो जाती है कि मामला क्या है, क्योंकि अगर विधि नहीं है तो फिर हम क्यों साधना करें!

और मैं दोनों ही बातें करता रहूंगा। क्योंकि मेरी समझ यह है कि आने वाले भविष्य में दोनों ही बातों का उपयोग होगा। इन दोनों बातों के विरोधी

होने ने मनुष्य को बहुत नुकसान पहुचाया है। बहुत नुकसान पहुंचाया है। कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि कौन आदमी किस मार्ग से चला जाएगा। कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसलिए आग्रह खतरनाक हो सकता है। और ये दोनों पंथ जब पंथ बनें तो आग्रह पूर्ण हो गए। बहुत आग्रह पूर्ण हो गए। अब जैसे कृष्णमूर्ति हैं। अनाग्रह ही नहीं है। आग्रह भारी है। क्योंकि पॉजिटिव को बरदाश्त ही न कर सके वे। वे मान ही न सकेंगे कि साधन भी हो सकता है, हो ही नहीं सकता है। निगेटिव के लिए आग्रह अति है।

अब जैसे भक्त हैं, मीरा है। वह मान ही न सकेगी कि ऐसा भी हो सकता है कि साधन न हो। वह मान ही नहीं सकती है। वह कहेगी, कि सभी साधन हैं। असाधन तो ही नहीं सकता है। बिना साधन तो हो ही नहीं सकता है।

मेरी तकलीफ यह है कि मुझे दोनों ही ठीक हैं। लेकिन अगर मैं दोनों को एक साथ आपसे ठीक कहूं तो आप कन्फ्यूज्ड भी हो जाएंगे। फिर तो आप बिल्कुल पागल हो जाएंगे। इसलिए कभी मैं एक की बात करता हूं, सोचता हूं कि जिसे निगेटिव पकड़ जाएगा वह निगेटिव से चला जाएगा। कभी पॉजिटिव की बात करता हूं, सोचता हूं कि कभी किसी को पॉजिटिव पकड़ जाएगा। इसलिए मुझसे ज्यादा इन-कंसिसटेंट (असंगत) आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। कंसिसटेंट (संगत) मुझे होना हो तो बिल्कुल हो सकता हूं। उसमें कोई कठिनाई नहीं है। एक को पकड़ लूं तो कंसिसटेंट हो जाऊंगा। लेकिन नहीं हो पाऊंगा। मैं दोनों की ही बात करता रहूंगा। और फिर यह भी पक्का नहीं है कि आप के लिए किस क्षण में कौन सी चीज ठीक पड़ जाएगी। यह भी पक्का नहीं है। ऐसा नहीं है कि एक आदमी को सदा ही निगेटिव ठीक पड़ता है। हो सकता है कि कल उस को निगेटिव ठीक पड़ता हो और आज न पड़े। क्योंकि निगेटिव की असफलता हो सकती है जो उसके चित्त को पॉजिटिव की तरफ ले आए। पॉजिटिव की असफलता निगेटिव की तरफ ले जाए। यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसलिए आग्रह पूर्ण मन्तव्य खतरनाक है। पर आग्रह से बचो तो इन-कंसिसटेंसी अनिवार्य हो जाती है, असंगत वक्तव्य हो जाएंगे।

इसलिए निरंतर लोग मुझे चिट्ठियां लिखते रहते हैं कि आपने पहले यह कह दिया है, आपने फलां किताब में यह कह दिया है, उस किताब में आपने वह कह दिया है। इस शिविर में आपने यह कहा था, उस शिविर में आपने वह

कहा था। वह नहीं समझ पा रहे हैं कि उन्हें जो ठीक लगे उससे वे चले जायं। मैं तो सब कहता रहूंगा। यह एक अर्थ में नया प्रयोग है। और मैं यह मानता हूं कि असंगत होने से बड़ी और कोई हिम्मत नहीं है। क्योंकि बहुत झंझट का काम है ना। संगत होना बहुत सुविधापूर्ण है। एक पक्की राह है मेरी, एक पक्का हिसाब है, उतना कह देता हूं। बात खतम हो गई। दूसरा गलत है। उसको मैं काट ही देता हूं। उसकी तरफ से कोई सवाल ही नहीं उठता है। लेकिन मेरे लिए दूसरा भी महत्वपूर्ण है। अगर मैं उसे गलत भी कहता हूं तो सिर्फ इसीलिए कह रहा हूं कि यह रास्ता आपकी समझ में आ जाय। लेकिन जब दूसरे को मैं ठीक कहूंगा तो इस रास्ते को इतना ही गलत कह दूंगा।

असल में मेरे लिए गलत और सही नहीं है। दो रास्ते हैं और दो तरह के लोग हैं। और हर आदमी में भी दोनों तरह के पहलू है। और जटिलता बहुत ज्यादा है। इसलिए पुरुष-चित्त जो है (पुरुष नहीं पुरुष चित्त) उसके लिए पॉजिटिव रास्ता आसान पड़ जाता है। क्योंकि वहां एग्रेसन है, आक्रमण है। कुछ जीतने को चाहिए, कुछ पाने को चाहिए, कुछ पकड़ने को चाहिए। स्त्री चित्त जो है वह निगेटीविटी है। वह रिसेप्टिविटी है, ग्राहकता है। कोई आए। वह आक्रमण नहीं है, प्रतीक्षा है। तो जिस सदी में पुरुष का बहुत प्रभाव होता है, जैसे पिछली सारी सदियां हैं जिसमें स्त्री का कोई प्रभाव नहीं था, पुरुष का प्रभाव था, वह सब साधन की सदियां हैं। आने वाले दिनों में स्त्री धीरे धीरे प्रभावी हुई है। और पश्चिम में जहां कि स्त्री बहुत प्रभावी हो गई है वहां कृष्णमूर्ति जैसे विचार का प्रभाव पड़ सकता है। क्योंकि निगेटी-विटी बढ़ी है। मगर यह बड़ा डोलता हुआ मामला है। रोज डोलता रहता है। जो ठीक लग जाए आपको, दो में से एक निर्णय प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर ले लेना चाहिए। अगर उसे लगता हो कि सब चीज बाधा मालूम पड़ती है तो यह निर्णय भी बहुत अच्छा है।

एक महिला : कैसे निर्णय लें कि कौन सा मार्ग हमारे लिए उपयुक्त है? क्या बुद्धि से निर्णय होगा?

आचार्यजी : प्रयोग से ही जान सकोगी। बुद्धि भागीदार होगी प्रयोग में भी, लेकिन अकेली बुद्धि से जान न सकोगी, क्योंकि तुम्हें कैसे पता चलेगा कि क्या तुम्हारे लिए ठीक है। अकेली बुद्धि से पता नहीं चलेगा। क्योंकि अनुभव

करने की क्षमता नहीं है बुद्धि में। अनुभव की क्षमता तो टोटल परसनेलिटी (पूरे व्यक्तित्व) में है। अनुभव पर बुद्धि विचार कर सकती है। अगर अनुभव हाथ में न हो तो बुद्धि कुछ भी नहीं कर पाती है। तो इसलिए प्रयोग करो, देखो। प्रयोग के अनुभव जो आएं उन्हें बुद्धि के हाथ में दे दो। उससे कहो कि सोचो । और अगर ऐसा लगता है कि गति होती है साधन से तो चली जाओ साधन में। फिर पूरी चली जाओ। ऐसा लगता है कि नहीं होती है गति तो असाधन में चली जाओ।

और यह मेरी इच्छा है कि जो लोग गहरे में जायं, किसी भी एक विधि में से, उनको बाद में मैं दूसरी भी विधि से ले जाना चाहूंगा ताकि वे आग्रह-पूर्ण न रह जायं। इस सम्बंध में पुराना, अतीत का बहुत दुखद अनुभव हुआ है कि जो जिस विधि से गया फिर उसने लौट कर उससे विपरीत विधि का प्रयोग नहीं किया। करना बहुत कीमती है। क्योंकि तब आप में आग्रह रह ही नहीं जाएगा। क्योंकि फिर आप कह सकेंगे कि सब रास्ते पहुंचा देते हैं, और यह भी कह सकेंगे कि पहुंचने के लिए कोई रास्ता नहीं है। ●●●

आचार्यश्री रजनीश की सृजनात्मक जीवन दृष्टि

का

पाक्षिक पत्र

यु क्रां द

मानसेवी सम्पादक :

अरविन्द कुमार

एक प्रति : ६० पैसे ❀ वार्षिक शुल्क : १२ रुपये

देश के कोने कोने में विक्रय एजेन्ट नियुक्त करने हैं

सम्पर्क करने तथा शुल्क भेजने का पता :

अरविन्दकुमार, सदस्य युक्रांद प्रकाशन समिति,

कमला नेहरू नगर, जबलपुर (म. प्र.) फोन : २९५७

संकलन : महायोग लक्ष्मी

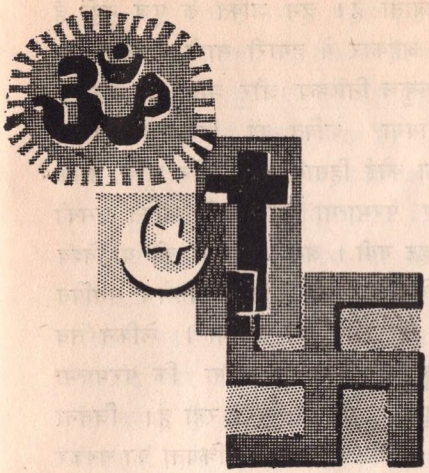

निष्क्रिय ध्यान : व्यक्ति का रूपान्तरण

पहली बात यह समझ लेनी जरूरी है कि क्रिया उतनी ही सफल और कुशल होती है जितना व्यक्ति अक्रिया में होता है। अक्रिया में जाने से क्रिया बन्द नहीं होती सिर्फ कर्ता मिट जाता है। सिर्फ यह भाव मिट जाता है कि मैं करने वाला हूं। और इस भाव के मिटने से दुनिया में असुविधा न होगी, बहुत सुविधा होगी। इसी भाव के कारण दुनिया में बहुत असुविधा है। प्रत्येक को ख्याल है कि मैं कर रहा हूं। करते हम बहुत कम रहे हैं, कर्ता बहुत बड़ा खड़ा कर लेते हैं। उन कर्ताओं में, उन अहंकारों में संघर्ष होता है। दुनिया में जितनी असुविधा है वह अहंकारों के संघर्ष से पैदा होती है। दूसरी बात : जितनी ही भीतर शांति होगी, निष्क्रिय चित्त होगा, मौन आत्मा होगी, उतनी ही वह मौन आत्मा शक्ति का स्रोत बन जाती है। जितनी बेचैन, अहंकारग्रस्त, द्वन्द्व में ग्रस्त, तनाव, अशांति से भरी

आत्मा होगी, उतनी ही शक्तिहीन हो जाती है। हम शक्ति के पुंज नहीं हैं क्योंकि हमारे द्वन्द्व में, मन की चिंता में, अहंकार में हमारी सारी शक्ति व्यय हो जाती है। अगर कोई व्यक्ति भीतर बिल्कुल निष्क्रिय और शांत हो जाय तो शक्ति का जलता हुआ अंगार बन जायगा, शक्ति का रिजर्वायर होगा। इतनी शक्ति होगी उसके पास कि जिसका कोई हिसाब नहीं। और चूंकि उसके कर्ता का अहंकार मर चुका होगा इसलिए परमात्मा की सारी शक्ति उसकी शक्ति हो जायगी। वह जो दीवाल है वह हट गयी। अब परमात्मा की या विश्व की सारी शक्ति उससे जुड़ गयी है इस शक्ति के साथ। और समग्ररूपेण समर्पित वह व्यक्ति परमात्मा के हाथ में क्रिया का स्रोत बन जायगा। लेकिन तब उसमें ऐसा नहीं लगेगा कि मैं कर रहा हूं। तब ऐसा ही लगेगा कि परमात्मा कर रहा है। ऐसा लगेगा कि हो रहा है, मैं कर नहीं रहा हूं। जितना मनुष्य भीतर निष्क्रिय होता है उतना ही उसके जीवन की सक्रियता का चक्कर कुशलता से घूमने लगता है। भीतर आत्मा की कील खड़ी होती है और व्यक्तित्व की क्रिया का चाक घूमता है। कील को ऐसा नहीं लगता कि मैं घूम रही हूं, कील जानती है कि चाक घूम रहा है, मैं खड़ी हूं।

ध्यानस्थ व्यक्ति जानता है मैं ठहरा हुआ हूं, वह जो अंतरतम है वह रुका हुआ है, वह नहीं चल रहा है। चलने का सारा प्रवाह बाहर है— चाक है, परिधि है, सरकमस्टैंस है। वह जो सेंटर है, वह जो केंद्र है वह मौन और चुप है। जीवन में सबसे बड़ी कला यही है कि भीतर निष्क्रियता हो और बाहर से पीड़ा हो। और जीवन का सबसे बड़ा सार सूत्र कि जीवन पैराडाक्सेस पर, विरोधी चीजों से निर्मित हो। एक सांस भीतर जाती है, तत्क्षण दूसरी सांस बाहर जाती है। सांस बाहर गयी नहीं कि फिर भीतर चली गयी है। हम कभी नहीं कहते कि बाहर सांस चली गयी, हम भीतर क्यों ले जायं? जब बाहर निकल ही गयी तो निकल गयी, बार बार भीतर ले जाने की क्या जरूरत है? लेकिन सांस बाहर जाती है और भीतर आती है और इन दो विरोधी डायमेंशन में, दो विरोधी आयाम में हमारा जीवन बाहर और भीतर, बाहर और भीतर है। दिन भर हम जागते हैं, रात हम सो जाते हैं। हम नहीं कहते कि अगर हम सो गये तो सोना तो जागने से बिल्कुल उल्टा है, तो फिर हम जागेंगे कैसे? हम यह भी नहीं कहते कि हम जाग गये तो हम सोयेंगे कैसे, जागना तो सोने से बिल्कुल उल्टा है – जागना क्रिया है, सोना अक्रिया है। लेकिन मजे की बात है, अगर रात भर ठीक से न सो पाये तो

दूसरे दिन ठीक से जाग न पायेंगे। ठीक से जो सोता है, वह ठीक से जागता है। इसका मतलब हुआ, जो ठीक से निष्क्रय हो जाता है रात में, दूसरे दिन सुबह उठते ही सक्रिय हो जाता है। और जो जितना सक्रिय होता है दिन में, उतनी गहरी निष्क्रियता में रात में चला जाता है। जीवन विरोधों पर खड़ा है, जीवन का सारा खेल विरोध पर है। दो विरोध से मिलकर जीवन की सारी गति है। तो जब मैं यह कह रहा हूं कि ध्यान की निष्क्रियता में चले जायं तो उसका अर्थ यह नहीं है कि आप मर जायेंगे, या आपकी क्रिया खो जायेगी। नहीं, कर्ता का अहंकार खो जायगा। और जितना गहरे ध्यान में जायेंगे उतनी ही गहरी क्रिया बाहर हो जायेगी। जितनी गहरी सांस भीतर ले जायेंगे उतनी ही गहरी सांस बाहर आयेगी। भीतर की गहराई और बाहर की गहराई हमेशा अनुपात में बराबर होती है। जो जितनी निष्क्रियता में जा सकता है वह उतना ही सक्रिय हो सकता। यह वृक्ष हम देखते हैं। ये वृक्ष आपको जितने ऊपर दिखायी पड़ते हैं उतनी ही गहरी इसकी जड़ें गयी हुई हैं। जो वृक्ष आकाश की तरफ जितना ऊंचा गया है उतना ही पाताल की तरफ उसे नीचे भी जाना पड़ा। आप कहेंगे, नीचा और ऊंचा तो उल्टा ही आयाम है। अगर नीचे चले जायें तो फिर ऊपर कैसे जायेंगे? वृक्ष अगर कहे कि अगर मैं जड़ें नीचे ले जाऊंगा तो ऊपर कैसे जाऊंगा? मुझे तो ऊपर जाना है, मैं नीचे नहीं जाऊंगा। तो फिर याद रखना वह वृक्ष कभी ऊपर नहीं जा सकेगा। जितना वृक्ष नीचे जाता है उतना ही ऊपर जा सकता है। जिस वृक्ष को आकाश छूना हो उस वृक्ष को पाताल भी छूना पड़ता है।

जितना सक्रिय होना है उतना ही निष्क्रिय होना जरूरी है। एक ही फर्क पड़ेगा— कर्ता खो जायेगा। जितनी निष्क्रियता बढ़ेगी, जितना ध्यान बढ़ेगा, जितना मौन बढ़ेगा उतना ही कर्ता मिट जायगा। क्रिया तो रहेगी, कर्ता नहीं रहेगा। और अगर कर्ता नहीं रहेगा तो यह कहने का कारण न होगा कि मैं कर रहा हूं। तब ऐसा ही लगेगा कि हो रहा है। जैसे पानी गिरता है, बिजली चमकती है, नदी बहती है ऐसा ही सब हो रहा है, ऐसा प्रतीत होगा। ऐसी प्रतीति जिस व्यक्ति को हो जाती है, वह व्यक्ति परमात्मा को समर्पित हो चुका होता है। परमात्मा को समर्पण का इतना ही अर्थ है, अपना कर्तापन खो गया। अब जो विराट क्रिया का जगत् है, जो विराट सृजन चल रहा है, जो विराट गति चल रही है, उस गति के हम एक भाग और अंश हो गये हैं, उससे हम पृथक नहीं हैं। इसलिए यह मत सोचें कि अगर मेरी बात मानकर सब निष्क्रिय हो जायं तो क्या होगा! अगर मेरी बात मानकर कोई निष्क्रिय हो जाय तो जगत् में इतनी क्रिया का जन्म

होगा कि जिसका हमने अब तक अनुभव नहीं किया। आज तक भी जगत में वे ही लोग सक्रिय रहे हैं-- कृष्ण जैसे लोग। कितनी क्रिया है, लेकिन भीतर सब मौन। भीतर जब मौन डगमगा जाता है तो क्रिया में कुशलता नहीं होती, क्रिया अकुशल हो जाती है।

एक खलीफा था उमर। कुछ वर्षों से दुश्मन से युद्ध में लगा हुआ था। सात वर्ष हो गए थे, अनेक लड़ाइयां हुईं लेकिन उनकी जीत न हो सकी, कोई निर्णय न हो सका । न उमर जीतता था, न दुश्मन जीतता था। आखिरी लड़ाई चल रही थी और ऐसा लगता था कि कुछ निर्णायक फैसला हो जायगा। भरी दोपहरी है, उमर का दावं सफल हो गया है। दुश्मन का घोड़ा गिर गया और वह जमीन पर आ पड़ा। उमर ने छलांग लगायी अपने घोड़े से और उसकी छाती पर सवार हो गया। निकाला भाला। उसकी छाती में छेदने को है कि उस नीचे पड़े दुश्मन ने-- मरता आदमी कुछ भी कर सकता है-- उमर के मुंह पर थूक दिया। एक क्षण पहले उमर का भाला उठा था छाती में जाने को, ठहर गया। उसके थूकते ही ठहर गया। फिर वापस भाला उमर ने अपने स्थान पर रख दिया। उठकर खड़ा हो गया और अपने दुश्मन को कहा कि उठ जाइए, फिर सुबह कल लड़ेंगे। उसके दुश्मन ने कहा--पागल हो गये हो। सात बरसों से इसी की खोज में तुम थे, ऐसे अवसर की, और इसी अवसर की खोज में मैं भी था। आज तुम्हें मौका मिला है, आज तुम छोड़ते हो मुझे ? भाले को घुस जाने दो। क्या कारण हो गया छोड़ने का ? उमर ने कहा--छोड़ता हूं क्योंकि एक संकल्प था, एक भाव था, एक योजना थी कि जब तक शांत हूं तभी तक लड़ूंगा। अशांत हो गया कि फिर नहीं लड़ूंगा। तुमने थूक दिया और मैं अशांत हो गया। भीतर डगमगा गया और मन हुआ कि भोंक दूं भाला, फिर मुझे लगा कि अब लड़ाई व्यक्तिगत हो गयी। अब मैं आ गया। अब कर्ता आ गया। अब तक उसूलों की लड़ाई थी। अब तक लड़ते थे सत्य के लिए, अब तक लड़ते थे जो ठीक था उसके लिए। अब तक मैं नहीं लड़ रहा था। अब तक एक विराट योजना का मैं एक अंग था। लेकिन तुमने थूका और मैं मौजूद हो गया। वह बात खत्म हो गयी। अब नहीं लड़ सकता हूं। कल सुबह फिर लड़ूंगा।

क्या मतलब हुआ इसका ? दुबारा ऐसे आदमी से कोई लड़ता है? वह दुश्मन तो मित्र हो गया। पैरों पर गिर गया। उसने कहा, मुझे पता भी नहीं कि तुम सात बरसों से शांति से लड़ते थे; तुम्हारे भीतर क्रोध नहीं था, वैमनस्य नहीं था, ईर्ष्या नहीं थी। यह हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि ऐसा आदमी भी

लड़ सकता है, जिसके भीतर क्रोध न हो, ईर्ष्या न हो, वैमनस्य न हो। यह हम सोच ही नहीं सकते हैं कि ऐसा आदमी भी सक्रिय हो सकता है, जो निष्क्रिय हो।

हमारे सोचने-समझने के ढंग बहुधा गणित की लकीर पर चलते हैं और जिंदगी गणित की लकीर पर नहीं चलती। जिंदगी के गणित बहुत गहरे हैं। वहां एकदम सीधा-सीधा कुछ भी नहीं होता। वहां बड़ी उल्टी चीजें होती हैं। असल में जिंदगी की पूरी कीमिया, जिंदगी की पूरी केमिस्ट्री एक विरोध पर खड़ी है। नींद है, जागरण है। रात है, दिन है। क्रिया है, अक्रिया है। जन्म है, मृत्यु है। वह जन्म और मृत्यु ही जीवन के मेहराब के दो विरोधी छोर हैं जिनके दबाव से जिंदगी खड़ी है। इधर जन्म है, उधर मौत है। दोनों उल्टी चीजें हैं। हम कभी नहीं पूछते कि जो जन्मता है वह मर कैसे जाता है? क्योंकि जन्म तो उल्टा है, मौत बिलकुल उल्टी है, लेकिन हम कहते हैं कि जो जन्मता है, वह मरेगा। क्योंकि जन्म एक छोर है, उससे उल्टा छोर होना चाहिए अन्यथा यह मेहराब न बनेगी जिंदगी की। उजाला अंधेरे पर खड़ा है। अंधेरा न हो तो उजाला नहीं होगा। रात दिन पर खड़ी है। दिन न हो तो रात न होगी। स्वास्थ्य बीमारी पर खड़ा है। सारी चीजें बहुत उल्टी चीजों पर खड़ी हैं। सारी जिंदगी उल्टे दबाव से बना हुआ मेहराब है।

इसलिए मैं कहता हूं कि जो निष्क्रिय हो जाता है भीतर, वह बाहर बड़ी सक्रियता को उपलब्ध होता है। लेकिन हमने ऐसे संन्यासी देखे हैं जो निष्क्रिय हो गये और जिंदगी से भाग गये। मेरा कहना है, ध्यान मे रखना कि वे निष्क्रिय नहीं हुए। उन्होंने निष्क्रियता को भी ओढ़ा है। वे अगर निष्क्रिय हो गये होते तो क्रिया से भाग नहीं जाते। क्रिया से सिर्फ वे ही भागते हैं जो क्रिया से अधिक डरते हैं। क्रिया से वे ही भागते हैं जिनकी निष्क्रियता झूठी है। जिनकी निष्क्रियता सच्ची है, उन्हें क्रिया का भय खत्म हो जाता है। क्रिया का तूफान चलता रहेगा और उनके भीतर कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। लेकिन जो डरते हैं कि क्रिया चली और उनकी निष्क्रियता टूटी। उनकी निष्क्रयता थोथी है, थोपी गयी है, कल्टीवेटेड है। इस तरह के संन्यासियों ने दुनिया में एक गलत धारणा पैदा कर दी कि जो लोग शांत हो जाते हैं वे जिन्दगी से भाग जाते हैं। ध्यान रहे, शांत आदमी कहीं नहीं भागता, सिर्फ अशांत भागते हैं। अशांत डरते हैं इसलिए भागते हैं। शांत आदमी को भागने का कारण नहीं रह जाता। शांत जहां भी खड़ा होगा वहीं खड़ा रहेगा, क्योंकि शांत को कोई कारण नहीं है जो अशांत कर सके। भले ही अशांति के तूफान-बवंडर चलते रहें बाहर, किंतु भीतर की शांति अपनी जगह खड़ी रहेगी। बल्कि शांत आदमी ऐसे बवंडरों को आमंत्रण दे देगा, ऐसे

बवंडरों को बुलायेगा, बुलावा दे आयेगा कि आना। क्योंकि जब भीतर शांति है और बाहर तूफान चलते हों तो इन दोनों के विरोध में जो पुलक, जो अनुभूति उपलब्ध होती है वह और किसी क्षण में उपलब्ध नहीं होती। इन दोनों के विरोध के बीच में जैसे अंधेरी रात में बिजली चमक जाय तो वह चमक भरे दिन में चमकी हुई बिजली की चमक से बहुत भिन्न है। ठीक वैसे ही शांत चित्त हो जाय और बाहर की अशांति चारों तरफ चलती हो तो कोई अन्तर नहीं पड़ता। बल्कि उस अशांति के बीच वह शांति और घनी और गहरी हो जाती है।

इसी सिलसिले में एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान में गहरे हो गये, शांत हो गये तो घर-गृहस्थी, परिवार, दूकान इन सबका क्या होगा ?

उन सबका अभी क्या हाल है ? घर–गृहस्थी का, पत्नी का, बच्चों का, दूकान का, धंधे का अभी क्या हाल है ? क्या अभी कोई बहुत अच्छी हालत है ? आगे इससे भी बुरी हालत हो सकती है। लेकिन हम बड़े भयभीत हैं इस नर्क के बारे में जो हमने पैदा कर लिया है। कोई उसको परिवार कहता है, कोई उसको धंधा कहता है, कोई कुछ और कहता है–इस पूरे नर्क को। यह नर्क भी कहीं मिट न जाय इसलिए बड़ी घबराहट है। धंधा नहीं मिटेगा, नहीं पत्नी मिटेगी, न परिवार मिटेगा, न बेटे और बेटियां मिटेंगी। लेकिन जो नर्क हमने खड़ा किया उसके नये रूप प्रकट हो जायेंगे। किसी स्त्री को प्रेम करना एक बात है और पत्नी बनाकर घर में बांध लेना बिल्कुल दूसरी बात है। घर में बांधने की चेष्टा ही इसलिए चलती है कि प्रेम नहीं है। प्रेम हो तो घर में बांधने की चेष्टा नहीं चल सकती। लेकिन डर है कि अगर नहीं बांधा तो और तो कोई भीतरी उपाय नहीं है जो किया जा सके। इसलिए बाहर से उपाय करने पड़ते हैं। समाज के सामने सात चक्कर लगाने पड़ते हैं और कानूनन अदालत में जाकर रजिस्टरी करवानी पड़ती है। क्योंकि और तो भीतर को जोड़नेवाली चीज कुछ है नहीं तो बाहर के जोड़ उत्पन्न करने पड़ते हैं। फिर उनके सहारे जाना पड़ता है। जिस दिन दुनिया में प्रेम होगा उस दिन पति भी नहीं होगा, पत्नी भी नहीं होगी। पति और पत्नी प्रेम के न होने के कारण हैं। प्रेम होगा तो पति-पत्नी बड़े बेहूदे शब्द लगेंगे जो बरदाश्त योग्य नहीं हैं। इन शब्दों से कोई दुनिया अच्छी नहीं हो गयी है, बहुत कुरूप, बहुत गंदी हो गयी है। पति-पत्नी बनने की क्या जरूरत है ? मित्र होंगे, साथ रहने वाले सहयोगी होंगे, साथी होंगे, कंपेनियन होंगे। कानून की क्या जरूरत है ? अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं तो बीच में कानून की क्या जरूरत है ? कानून की जरूरत तब आती है जब प्रेम संदिग्ध है, तो कानून के सहारे उसको रोकने की कोशिश की जाती

है। प्रेम का कोई भरोसा नहीं है इसलिए कानून का सहारा लेना पड़ता है। जहां प्रेम संदिग्ध नहीं है वहां कानून की क्या जरूरत है ?

तो हम बड़े डरते हैं। वह डर ठीक भी है एक अर्थ में, क्योंकि शांत हो जायेंगे तो बड़ी घबराहट लगती है कि यह सब जो नर्क का जाल हमने बुन रखा है यह टूट जायगा। यह टटना ही चाहिए तो ही स्वर्ग बन सकता है। पति-पत्नी तो जाने चाहिए, मित्र बचने चाहिए। अभी धंधा कर रहे हैं, दूकान कर रहे हैं, नौकरी कर रहे हैं वह सब बोझ है, जबरदस्ती है। और एक आदमी को जिन्दगी भर चालीस साल तक रोज दफ्तर में सुबह से सांझ तक जबरदस्ती बैठे रहना पड़ता है। अगर उसका दिमाग पत्थर न हो जाता हो तो कोई आश्चर्य हैं? चालीस साल तक एक आदमी लगातार एक काम को करता है, जो करने का उसका एक क्षण को मन नहीं है, लेकिन करता है, करना पड़ता है। तो चालीस साल तक अगर किसी मस्तिष्क पर इस तरह की नामसझी और ज्यादती गुजरे तो वह आदमी मरने के पहले बहुत पहले ही मर चुका होगा। उसके मस्तिष्क के कोमल तंतु टूट चुके होंगे, उसके हृदय ने बहुत पहले पंखुड़ियां बन्द कर ली होंगी, उसके प्राण बहुत पहले मशीन हो गये होंगे। वह मशीन की तरह दफ्तर आता है, जाता है। वह यह कर रहा है चालीस साल से। जैसे कि एक पटरी पर रेलगाड़ी दौड़ती रहती है वैसे ही बेचारा दफ्तर से घर, घर से दफ्तर दौड़ता रहता है। यह शंटिंग उसकी होती रहती है और इसको वह कहता है कि धंधा कर रहे हैं। कहीं शांत हो गये तो यह चला न जाय ! शांत होने से जिन्दगी जरूर दूसरी होगी, जरूर काम काम नहीं रह जायेगा, आनंद हो जायगा। और जब काम आनन्द हो जाता है तो जिन्दगी में और तरह के फूल खिलने शुरू होते हैं। लेकिन हम तो जानते ही नहीं किसी काम को जो आनन्द हो। हम तो बस काम जानते हैं। हम काम ही जानते हैं। काम और आनन्द से हमें कोई संबंध नहीं है। आनन्द बात अलग है। काम बात ही अलग है। अभी जो दुनिया हमने बनायी है उसमें काम का आनन्द से कोई संबंध नहीं। आदमी बरबाद होता चला गया है। आदमी की सारी की सारी आत्मा डिटोरिएट हुई है, पतित हुई है, पतित हो रही है, होती चली जायेगी। धीरे धीरे हम एक मशीन पर आदमी को पहुंचाते हैं। अगर चित्त शांत होगा तो काम बोझ नहीं रह जायगा, काम आनन्द हो जायगा। कबीर कपड़े बुनता है। फिर शांत हो गया है तो कपड़े बुनना बन्द नहीं हो गया है। कपड़ा बुनना जारी रहा लेकिन कपड़े की बुनावट बदल गयी है, कपड़े के बुनने का ढंग बदल गया है। कपड़े

को बुननेवाला आदमी बदल गया है, कपड़े को बुनने की वृत्ति बदल गयी है, कपड़े के बुनने के संबंध का भाव बदल गया। कबीर बुनता भी है, नाचता भी है, गीत भी गाता है। उसके मित्रों ने कहा--अब तुम बन्द कर दो, अब अच्छा नहीं लगता कि तुम जुलाहे का काम करो। कबीर ने कहा--अब जब मैं काम करने योग्य हुआ हू तब तुम कहते हो बन्द कर दो। अब तक तो काम किया ही नहीं था, सिर्फ बोझ ढोया था। अब आनन्द हो गया है काम। अब यह जो बुन रहा हूं यह तुम्हें पता नहीं किसके लिए बुन रहा हूं? यह राम के लिए बुन रहा हूं। लेकिन लोगों ने कहा--राम आयेंगे कहां बाजार में, उनको तो बहुत वक्त हो गया! कबीर ने कहा--अब राम के सिवाय कोई दिखायी नहीं पड़ता। अब तो जो ही आ जायेगा वह राम है और जो भी मेरे कपड़े पहन लेगा मैं धन्यभागी हूंगा। और तो भगवान की सेवा कैसे करूं? तो कबीर बुनता है कपड़ा और भागता है बाजार की तरफ। लोग उसे पूछते हैं कि कहां जा रहे हो? तो वह कहता है कि राम की तलाश में जा रहा हूं। कपड़ा बना लिया, बहुत बढ़िया बनाया है, राम पहनेंगे तो खुश होंगे। और वह बाजार में चिल्लाता है कि 'राम! कपड़े ले आया हूं, कोई राम को जरूरत हो तो ले जाये, बहुत अच्छा बनाया है।'

अब यह बात और हो गयी, अब यह काम और हो गया। अब इस काम से और उस काम से, जिसे हम करते रहे कोई संबंध नहीं है। काम नहीं रुक जायेगा आदमी के शांत होने से। काम रूपांतरित होगा, ट्रांसफार्म होगा। काम एक खुशी हो जायेगी, काम एक आनन्द हो जायेगा। और अभी काम एक नर्क है। अभी काम से किस तरह छूटा जाय इसी की चिन्ता में हम रहते हैं। काम से किस तरह हम बच जायं इसी की चिन्ता में रहते हैं। और इसी काम के लिए बड़ी घबराहट भी रहती है कि कहीं यह काम-धाम सब बन्द न हो जाय! वह घबराहट क्यों है? वह इसीलिए है कि काम-धाम हम बन्द करना चाहते हैं, वह बन्द करने योग्य है। लेकिन मजबूरी है। रोटी चाहिए, कपड़े चाहिए, पत्नी है, बच्चे हैं। वह भी सभी मजबूरियां हैं। उनको भी खिलाना है, उनके लिए भी मकान बनाना है। सब मजबूरियां हैं। पूरी जिन्दगी मजबूरी है। वह एक पुलक नहीं, एक नृत्य नहीं।

जरूर शान्त आदमी की जिन्दगी और ढंग की होगी। वह भी जियेगा यहीं, लेकिन दूसरा आदमी हो जाएगा। वह भी काम करेगा लेकिन उस काम को

करने में सब कुछ बदल जाएगा। वह काम भी उसका प्रेम हो जाएगा। वह काम भी उसकी सेवा बन जाएगी। वह काम भी उसकी पूजा और प्रार्थना हो जाएगी। मुझे ऐसा नहीं लगता कि शान्त आदमी दुनिया में बढ़ेंगे तो दुकानें कम हो जाएंगी। शान्त आदमी बढ़ेंगे तो दुकानें दुकानें नहीं रह जाएंगी। एक बात जरूरी है, दुकानें तो कम नहीं होंगी, लेकिन शान्त आदमी बढ़ जाएं तो मन्दिर, मस्जिद, गुरु, संन्यासी, साधु—ये कम हो जाएंगें। क्योंकि इनके पास अशान्त आदमी जाते हैं। इनके पास शान्त आदमी किसलिए जाएगा? तो गुरुडम चली जाएगी, एक दुकान चली जाएगी। गुरुओं की दुकान बन्द हो जाएगी। और कोई दुकान बन्द होने का कारण नहीं है। मन्दिर-मस्जिद जरूर बन्द हो जाएंगे। उनमें कोई नहीं जाएगा। क्योंकि जब पूरी तरह जिन्दगी मन्दिर मालूम पड़ने लगी तो कौन मंदिरों में जाएगा। जब पूरी जिन्दगी नरक मालूम पड़ती है तो लोग मन्दिर बनाते हैं। गांव में एक मंदिर इस बात का सबूत है कि पूरा गांव मंदिर नहीं बन पाया। हम ऐसा समाज निर्मित नहीं कर पाये जहां पूरा गाँव मंदिर होता। बस अपने मन को समझाने के लिये एक मन्दिर बनाया हुआ है। गांव पूरा नरक है! नर्क में मंदिर बन सकता है और नर्क में रहने वाले मंदिर बना सकते हैं! और नर्क में रहने वाले दान करके मंदिर खड़ा कर सकते हैं! आखिर नर्क के रहने वाले जो बनायेंगे वह भी नर्क ही होगा। इसीलिए हमारे मंदिर-मस्जिद तो नर्क के स्थान हैं। हमारे तीर्थ सब नर्क के स्थान हैं। हम अशांत जब मिलकर एक मंदिर बनाएंगे गांव में तो वह बनायेगा कौन? हमी बनाएंगे न? तो हमारी काली छाया उसको भी घेर लेगी!

एक दिन ऐसा भी हो सकता है कि लोग शान्त होते चले जायं तो पूरा गांव ही मंदिर हो जाय। और जब कोई पूछे उस गांव में आकर कि मंदिर कहां है तो हमें हैरानी हो जाएगी कि कहां बतायें? क्योंकि पूरा गांव ही मंदिर है। पूरा गांव मंदिर हो सकता है। इसलिए मैं मंदिरों के खिलाफ हूं? लेकिन हमें ऐसी बातें समझायी गयी हैं कि जो आदमी शान्त हो जाएगा—धन्धा छोड़ देगा, पत्नी छोड़ देगा, बच्चे छोड़ देगा, भाग जाएगा। भागकर क्या करेगा फिर? फिर एक आश्रम बनायेगा, फिर शिष्य इकट्ठे करेगा, बेटे-बेटियां जोड़ेगा, फिर एक नयी दुकान और एक नया घर बनायेगा। वह सब चल रहा है। आखिर भागकर जाएगा कहां यह आदमी? जिस तरह का आदमी है, यह करेगा क्या? एक दुकान छोड़ेगा, दूसरी दुकान बनायेगा। यह आदमी बनायेगा नहीं तो फिर जाएगा कहां? यह जंगल में जाएगा और वहां दुकान करेगा। अबतक हमने स्थान बदलने की ही चेष्टा की है। आजतक मनुष्य जाति के इतिहास में हमने स्थान और परिस्थिति बदलने की

फिक्र की है। आदमी नहीं बदलता। वह आदमी फिर जाकर दूसरी जगह वही स्थिति बना लेता है।

मैंने सुना है कि एक आदमी ने अपने जीवन में अमेरिका में आठ विवाह किये। पहला विवाह करने के छः महीने बाद वह घबरा गया। छः महीने भी लम्बा वक्त है, छः दिन में ही घबराहट शुरू हो सकती है। छः महीने में वह घबरा गया और परेशान हो गया और उसने कहा—यह कहां से गलत औरत मिल गई! औरत ने सोचा होगा, कहां का गलत आदमी मिल गया! फिर उसने तलाक दे दिया। फिर उसने दूसरी बार बहुत खोज-बीन कर विवाह किया, बहुत जांच-पड़ताल की। अब वह पहली ही दृष्टि में प्रेम में नहीं पड़ गया। पहली दफा भूल हो चुकी थी। बहुत अनुभवी था, बहुत सोच-विचार करके, खोज-बीन करके उसने विवाह किया। लेकिन दो महीने बाद पाया कि यह औरत भी वैसी ही औरत साबित हुई जैसी पहली थी। वह बहुत परेशान हुआ। उसको भी तलाक दिया। उसने आठ बार विवाह किये और आठवीं बार उसे यह समझ में आया कि हर बार विवाह तो मैं ही करता हूं। हर बार स्त्री तो मैं ही चुनता हूं। हर बार खोज तो मैं ही करता हूं। और मैं आदमी वही हूं कि मैं फिर वही औरत ढूंढ लाता हूं जैसी पहली थी। इसकी समझ, इसकी पसन्द, इसकी पकड़ वही है। वह तो बदलता नहीं। वह फिर वैसी ही औरत को पकड़ के ले आयेगा। जहां जहां, जिन जिन मुल्कों में तलाक विकसित हुए हैं वहां एक अद्‌भुत अनुभव हुआ और वह अनुभव यह है कि हर बार आदमी फिर उसी तरह के सम्बन्ध जोड़ लेता है, जैसे उसने पहले जोड़ा था। इसलिए आप बहुत चिन्तित मत होना कि हमारे यहां तलाक की सुविधा नहीं है। तो आप कोई बहुत नुकसान में नहीं हैं। एक सा मामला है। यह स्त्री बदल जाती है, आदमी बदल जाता है लेकिन फिर उसी तरह का आदमी खोज लाया जाता है। वह खोजने वाला आदमी नहीं बदलता है। असली सवाल तो खोजने वाले की बदलाहट का है। और हमेशा ऐसा हुआ है, तलाक वालों ने ही ऐसा नहीं किया है। संन्यासी भी ऐसा ही करते हैं। एक घर छोड़कर भाग जाते हैं तो यह कभी नहीं पूछते कि मैं तो आदमी वही का वही हूं, मैं जा कहां रहा हूं ? मैं जहां पहुंच जाऊंगा, मैं फिर वही चीज खड़ी कर दूंगा जो यहां से छोड़कर के गया था। नाम बदल जायेगा लेकिन फिर वही होगा। फिर वही होने वाला है। वह जो आदमी भागकर जा रहा है उसका जिस तरह का मस्तिष्क है, जिस तरह का मन है उसके पास

वही मन फिर अपने चारों तरफ नये संसार रचेगा, वह फिर वहां वही बना देगा। अपने से बचना मुश्किल है, इसलिए भागकर जायगा कहां? मेरा कहना है, अबतक जो धर्म दुनिया में विकसित हुए उन्होंने एस्केपिज्म सिखाया है, भागना सिखाया है, पलायन सिखाया है लेकिन परिवर्तन नहीं। और असली सवाल है कि आदमी बदले। वह बदल ध्यान से आती है, शांति से आती है, भीतर शून्य और मौन से आती है। वह बदलाहट आ जाय तो जिस घर में आप हैं वह घर और तरह का घर हो जायेगा क्योंकि उसको बनाने वाला आदमी बदल गया है, उस घर को और होना ही पड़ेगा।

महावीर के जीवन में एक बहुत सुंदर उल्लेख है। महावीर युवा हुए और उन्होंने अपनी मां से, अपने पिता से कहा कि मैं संन्यासी हो जाना चाहता हूं। तो महावीर की मां ने कहा कि मेरे जीते जी दोबारा यह बात मेरे सामने मत रखना। यह हमारे सामर्थ्य के सुनने के बाहर है। यह मैं कल्पना ही नहीं कर सकती कि मेरा बेटा और संन्यासी हो जाय। जब मैं मर जाऊं तब तुम इस तरह की बात सोच सकते हो, इसके पहले नहीं। महावीर बड़े अद्भुत आदमी रहे होंगे। अगर और संन्यासियों से जाकर पूछें तो उनको हैरानी होगी कि वे कच्चे संन्यासी रहे होंगे। किंतु महावीर राजी हो गये, मां से बोले कि ठीक है। हमको भी लगेगा कि आदमी कैसा है! अरे कहीं संन्यास ऐसे लिया जाता है कि मां ने कह दिया तो कहीं नहीं गये! मां कहेगी, पत्नी कहेगी, बेटे कहेंगे, बाप कहेंगे कि नहीं कहीं मत जाओ। ऐसे कहीं कोई संन्यासी हो सकता है? पहली तो बात यह कि संन्यासियों को पूछना ही नहीं चाहिए, चुपचाप भाग जाना चाहिए। क्योंकि पूछने का मतलब है झंझट बढ़ेगी। लेकिन महावीर मान गये। उन्होंने मां से कहा, ठीक है।

भाग्य की बात, दो साल बाद मां और पिता दोनों की मृत्यु हो गयी। दाह-संस्कार से लौटते थे तो बड़े भाई से महावीर ने कहा, कि अब मैं संन्यासी हो जाऊं? क्योंकि मां और पिता का कहना था कि जबतक वे हैं बात न करूं, तो मैंने बात नहीं की। भाई ने छाती पीट ली और कहा कि तुम पागल हो गये हो। हमारे ऊपर इतनी मुसीबत पड़ी कि मां-बाप चल बसे और तुम्हें संन्यास की आज ही सूझी। मेरे जिन्दा रहते बात मत करना। और महावीर राजी हो गये कि ठीक है। अभी संन्यासियों से पूछें तो वे कहेंगे कि गड़बड़ आदमी है, संन्यासी नहीं है। लेकिन महावीर अद्भुत आदमी थे, राजी

हो गये। एक वर्ष बीता, दो वर्ष बीते, फिर महावीर ने नहीं कहा कि मुझे संन्यास मिले। बात खत्म हो गयी। भाई कहते हैं जबतक वे हैं तबतक नहीं। लेकिन दो वर्ष बीतते बीतते घर के लोगों को ऐसा लगा कि महावीर हैं तो घर में, लेकिन नहीं के बराबर हैं। वह घर में नहीं हैं। वह थे और नहीं थे। और घर के लोगों को लगा कि उनकी मौजूदगी का पता पड़ना ही बन्द हो गया। महीनों बीत जाते, ऐसा नहीं लगता कि वे घर में हैं। वह न किसी बात में दखल देते हैं, न कोई आग्रह करते हैं, न वह कोई मांग करते हैं। वह ऐसे हैं जैसे एक छाया की तरह चुपचाप हैं, कब निकल जाते हैं घर के बाहर, कब घर के बाहर आ जाते हैं, कब सो जाते हैं, कब उठ जाते हैं, उनका होना न होना कोई सवाल ही नहीं रहा। घर के लोगों ने उनके बड़े भाई को कहा कि महावीर तो संन्यासी हो गया। भाई ने कहा, मैं भी हैरान हूं, ऐसा लगता नहीं कि वह घर में है या नहीं। अब उसे रोकने से क्या फायदा? अब कोई मतलब नहीं रोकने का। हम सोचते थे कि हमने रोक लिया है लेकिन वह तो जा चुका है। तो घर भर के लोगों ने इकट्ठे होकर महावीर से कहा कि आप तो जा ही चुके हैं, अब रोकने में कोई लाभ नहीं है, अब आपकी जैसी मर्जी। और महावीर घर से चल पड़े।

यदि महावीर जीवन भर भी न जाते, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था। यह घर से जाना न जाना बिल्कुल गौण बात थी, यह तो कोई अर्थ नहीं था, असली अर्थ अपने रूपांतरण का था, वह हो गया था। अब यह घर और बाहर बराबर था। महावीर को मानने वाले कहते हैं कि महावीर ने घर छोड़ा। सरासर झूठ कहते हैं। महावीर ने घर कभी छोड़ा ही नहीं। महावीर को घर छोड़ने के पहले घर और बाहर सब बराबर हो गया था। घर के लोग कहते थे रहो, तो रहे थे। घर के लोगों ने कहा चले जाओ, तो चले गये। ऐसा हुआ। महावीर को न जिद् थी कि मैं जाऊं, न जिद् थी कि मैं रहूं। ऐसा अनाग्रह का भाव था। ऐसे अनाग्रह का नाम ही अहिंसा है। यह भी हिंसा है कि मैं कहूं कि मैं जाऊंगा और यह भी हिंसा है कि मैं कहूं कि मैं यहीं रहूंगा। यह आग्रह दबाव है। महावीर ने सब छोड़ दिया। वह हवा की तरह हो गये। घर के लोगों को भी लगा कि अब बेकार की रोक है। वह हैं ही नहीं घर में, कभी के जा चुके हैं, सिर्फ शरीर रह गया है। आत्मा जा चुकी है। क्या फायदा है, अब हम क्यों बाधा बनें। उन्होंने कहा, ठीक है आप जायें, तो वे चल पड़े। यह है संन्यास, यह है व्यक्ति का रूपांतरण। अब

यह आदमी कहीं भी चला जाय, अब इसे वेश्या के घर में ठहरा दें तो भी दिक्कत नहीं है, क्योंकि अब इसे कहीं कठिनाई ही नहीं रही। यह आदमी ही बदल गया है। यह आदमी स्थान नहीं बदल रहा है, यह आदमी ही बदल गया है। मैं जो बात कर रहा हूं शांत की, मौन की, ध्यान की वह व्यक्ति के रूपांतरण की कीमिया की बात है। उससे सब कुछ बदल जायगा। एक बदले हुए आदमी के आसपास सब बदल जायेगा, क्योंकि उसकी देखने की दृष्टि बदल जायेगी। वह करेगा काम, चलेगा, उठेगा, बैठेगा। लेकिन अब वह दूसरा आदमी हो गया है। इसलिए उस पुराने आदमी ने जो दुनिया बनायी थी यह उस दुनिया में नहीं जियेगा, वह नयी दुनिया बनायेगा। इसकी मौजूदगी में नयी दुनिया का निर्माण शुरू हो जायेगा। यह आदमी दूकान पर भी बैठ सकता है। और जबतक ऐसे आदमी दूकान पर नहीं बैठेंगे तबतक दुनिया स्वर्ग नहीं बन सकती। यह आदमी पिता हो सकता है, यह आदमी भाई हो सकता है, बेटा हो सकता है। इस तरह का व्यक्तित्व पत्नी हो सकता है, मां हो सकता है। लेकिन जबतक इस तरह के लोग मां, बेटे, पत्नी और बाप नहीं बनेंगे तबतक दुनिया स्वर्ग नहीं हो सकती। हमने काफी उपद्रव मचा रखा है। हम अशांत हैं इसलिए स्वाभाविक है कि उपद्रव मचायें। अशांत आदमी दुनिया बसाये हुए हैं। अशांत आदमी विवाह कर रहे हैं, अशांत आदमी अदालतें चला रहे हैं, अशांत आदमी राष्ट्रों के मालिक बने हैं। घर में सिर्फ पति नहीं है, वह राष्ट्रपति भी है। सब चल रहा है रोज, बिल्कुल रोज चल रहा है। और कोई स्त्री इन्कार नहीं करती है कि हम राष्ट्रपति को बरदाश्त नहीं करेंगे। हालांकि कोई स्त्री अगर वह पद पा ले और उसे राष्ट्र-पत्नी कहा जाय तो राजी नहीं होगी बिल्कुल। वह तो किसी दिन अगर बनी तो उसको राष्ट्रपति ही कहना पड़ेगा, राष्ट्र-पत्नी कहलाने को कोई स्त्री राजी नहीं होगी, लेकिन राष्ट्रपति के लिए कोई स्त्री नाराज नहीं होगी। पुरुष राष्ट्रपति कैसे बना हुआ है? पुरुषों का हक है दुनिया में इसलिए सब चल रहा है।

हम रोगग्रस्त, अशांत लोगों ने जो जगत बनाया है वह जगत जितनी जल्दी बदल जाय अच्छा है। लेकिन वह जगत बदलेगा ही ऐसे जब कि रोगग्रस्त व्यक्ति बदले, अन्यथा फिर हम उसी तरह का जगत बना लेंगे। ऐसा ही हुआ है। रूस ने बदलाहट की और कुछ बदलाहट न हुई, ऊपरी बदलाहट हुई, भीतरी कोई बदलाहट न हुई, क्योंकि वही रोगग्रस्त व्यक्तियों ने बदलाहट की, फिर

वे ही रोगग्रस्त ऊपर बैठे, फिर वही सब का सब सिलसिला शुरू हो गया, जो था। पुरानी हालत बदली, गरीब-अमीर के बीच का फासला कम हुआ, लेकिन नये फासले खड़े हो गये। सत्ताधिकारियों के और गैर सत्ताधिकारियों का फासला उतना ही हो गया जितना फासला गरीब का और अमीर का था। जो कल मालिक था वह आज मैनेजर हो गया, नाम बदल गये, बात वही रही। लेकिन हम नाम बदल लेने को बहुत बड़ा काम समझ लेते हैं। कोई अपना गृहस्थाश्रम छोड़के आश्रम बना लेता है। हम कहते हैं बदलाहट हो गयी। नाम सिर्फ बदलता है, कहीं कुछ बदला नहीं। घर की जगह आश्रम लिख दिया और बदलाहट हो गयी। हमारी बुद्धि ऐसी ही चीजों पर अटकती है, चीजें ऐसे ही हम बदल लेते हैं। एक आदमी सफेद कपड़े पहने है, हम कहते हैं गृहस्थ है और वह कल गेरुआ वस्त्र पहनेगा तो हम कहेंगे स्वामी है, संन्यासी हो गया है। हम बिल्कुल पागल हैं, हमें बुद्धि में थोड़ा भी कुछ नहीं सूझता है कि हम क्या कर रहे हैं, हम क्या खेल किये जा रहे हैं ? एक आदमी ने गेरुआ वस्त्र पहन लिया तो क्या वह संन्यासी हो गया ? पहली तो बात यह है कि जो आदमी वस्त्र बदलने को संन्यास समझता है वह ईडियट है, स्टुपिड है, जड़ है, बुद्धि नाम की चीज उसके पास नहीं, क्योंकि बदलना था तो कपड़े ही बदलने की सूझी उसको! इससे ज्यादा व्यर्थ बात बदलने की और कुछ नहीं हो सकती। वह तो जड़बुद्धि है, और हम भी जड़ बुद्धि हैं तब तो इसकी सूझ को हम भी नमस्कार करते हैं कि यह बहुत बहुत बड़ा महान कार्य किया तुमने कि गेरुआ वस्त्र पहन लिया। हम चीजें बदल रहे हैं, नाम बदल रहे हैं, स्थान बदल रहे हैं, यह सब हम कर रहे हैं, लेकिन वह जो व्यक्ति है भीतर उसे बदलने की कोई चिन्ता नहीं। उसको बदलने का द्वार ध्यान है।

★

संकलन : ईश्वरभाई

'जिन खोजा तिन पाइयां ....' : संकल्प और विकल्प

(प्रश्नोत्तर)

एक मित्र ने पूछा है : यदि हम पूछें कि कौन हो? तो पूछने वाला और प्रश्न दोनों एक ही तो हैं, अलग नहीं हैं। जो प्रश्न बनकर खड़ा है वही तो उत्तर बनेगा। तब कैसे कभी जाना जा सकता है कि मैं कौन हूं?

सच है यह बात। जो पूछ रहा है वही उत्तर भी है। लेकिन पूछने के कारण उत्तर का पता नहीं चलता। पूछने से उत्तर नहीं मिलेगा। लेकिन पूछते रहें, पूछते रहें, पूछते जायें, फिर उत्तर व्यर्थ होते चले जायेंगे। अन्ततः जब कोई उत्तर नहीं बचेगा तो प्रश्न ही व्यर्थ हो जायेगा। और जब प्रश्न भी गिर जाता है, तब उत्तर तो मिलता ही नहीं। हां, जब प्रश्न ही गिर जाता है और चित्त निष्प्रश्न होता है तब हम इसे जान लेते हैं। प्रश्न पूछने का प्रयोजन उत्तर खोज लेना नहीं है। प्रश्न पूछने का प्रयोजन सब बंधे, सब सीखे उत्तरों को व्यर्थ कर देना है और उस जगह पहुंच जाना है जहां प्रश्न भी अंतत : व्यर्थ हो जाता

है। प्रश्न जहां गिर जाता है वहां ज्ञान है। उत्तर वहां मिल जाता है वहां ज्ञान नहीं है। यह थोड़ी समझने जैसी बात है। हम सोचते हैं, ज्ञान है उत्तर का मिलना और मैं आपसे कहता हूं, ज्ञान है प्रश्न का गिर जाना।

एक युवा खोजी बुद्ध के पास गया और उसने जीवन भर में बहुत से प्रश्न खोजे थे जिनके उत्तर मिले थे। उसने जाकर दो प्रश्न बुद्ध के सामने रखे और कहा, "चाहता हूं इनके उत्तर।" बुद्ध ने कहा, "पहले भी और किसी से ये प्रश्न पूछे हैं?" उस युवक ने कहा, "बहुतों से पूछे हैं। तीस वर्ष इन्हीं में श्रम किया है, अबतक जिन्दगी इन्हीं में गंवायी है।" बुद्ध ने कहा, "जिनसे पूछा था उन्होंने उत्तर दिये या नहीं?" उस व्यक्ति ने कहा, "मुझे उत्तर मिल जाता तो मैं आपसे पूछने नहीं आता। मुझे उत्तर नहीं मिला।" बुद्ध ने कहा, "इतने लोगों से पूछने के बाद जो उत्तर नहीं मिला, फिर भी तू पूछे चला जा रहा है। तुझे यह ख्याल नहीं आया कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि पूछते-पूछते उत्तर मिलेगा ही नहीं। मैं भी तुझे उत्तर दूंगा, उससे भी तुझे उत्तर नहीं मिलेगा, क्योंकि आज तक उत्तर देने से उत्तर मिला ही नहीं।" वह आदमी पूछने लगा, "फिर मैं क्या करूं?" बुद्ध ने कहा, "तू एक वर्ष यहां रुक जा और इतना शांत हो जा कि प्रश्न भी गिर जाय। फिर वर्ष भर के बाद जब तेरा चित्त पूर्ण शांत हो, तब अगर तूने पूछा तो उत्तर दूंगा और तुझे मिल जायगा।"

एक भिक्षु वृक्ष के नीचे बैठा यह सब सुन रहा था। वह ज़ोर से खिलखिला के हंसने लगा। उस नये आये आगंतुक ने पूछा, "आप हंसते क्यों हैं?" उस भिक्षु ने कहा, "धोखे में पड़ जायेगा। मैं भी कुछ वर्ष पूर्व बुद्ध के पास इसी तरह पूछने आया था। उन्होंने मुझसे कहा, एक वर्ष रुक जाओ और चुप हो जाओ और फिर पूछना तो मैं उत्तर दूंगा। यह बड़े धोखे की बात है। तू इस बात में पड़ना मत। क्योंकि मैं जब चुप हो गया और वर्ष भर बाद बुद्ध ने मुझसे कहा, पूछना है? तो मैंने कहा, पूछना मुझे कुछ नहीं है, मेरे पास पूछने को ही कुछ नहीं है। मैंने पूछा नहीं, उन्होंने उत्तर नहीं दिया। मैं तुझसे कहता हूं, अगर पूछना है तो अभी पूछ ले, क्योंकि वर्ष भर बाद तेरे पास पूछने को ही नहीं होगा। यह मेरे साथ ही नहीं हुआ है, यह सैकड़ों लोगों के साथ मैं रोज रोज देखता हूं। वे आते हैं, पूछते हैं, बुद्ध कहते हैं पहले चुप हो जाओ, फिर पूछना, फिर मैं उत्तर दूंगा। वे चुप

ही रह जाते हैं, वे फिर कुछ पूछते ही नहीं हैं। और बुद्ध के उत्तर का पता ही नहीं चलता है कि उत्तर क्या है। बुद्ध कहते रहे कि मैं अपनी बात पर कायम रहूंगा। अगर वर्ष भर बाद तूने पूछा तो मैं उत्तर दूंगा। अब तू ही पूछने से इन्कार कर दे तो मैं क्या कर सकता हूं।" वह आदमी रुक गया। उस आदमी का नाम मौलिकपुत्त था। वर्ष भर बाद, ठीक वर्ष बीतने पर, बुद्ध ने उससे कहा, "मौलिकपुत्त, खड़े हो जाओ, और पूछो।" वह मौलिकपुत्त हंसने लगा और उसने कहा, "नहीं पूछना है, नहीं पूछना है।" बुद्ध ने कहा, "अब क्यों नहीं पूछना है?" उसने कहा, "पूछने को कुछ बचा ही नहीं। मन इतना शांत हो गया है कि प्रश्न ही नहीं है। और अब मैं उत्तर की झंझट में पड़ने वाला नहीं हूं।" जब प्रश्न ही नहीं है तो उत्तर की झंझट कौन लेगा! प्रश्न गिर जाते हैं एक दिन, वहीं उत्तर मिलता है। उत्तर मिलने से कोई उत्तर नहीं मिलता है। सब उत्तर सीखे हुए होते हैं। सब उत्तर दूसरों के उधार, किताबों और शास्त्रों के होते हैं। अपने उत्तर तो उसी दिन मिलते हैं जिस दिन सब प्रश्न गिर जाते हैं। लेकिन वे उत्तर, जो मिलते नहीं हैं वे स्वयं उत्तर हो जाते हैं जब प्रश्न गिर जाते हैं। जैसे किसी आदमी को सन्निपात हो, बुखार चढ़ा हो, होश खो दिया हो और वह पूछता हो कि मेरी खाट आकाश में उड़ गयी। यह खाट पूरब की तरफ उड़ रही है कि पश्चिम की तरफ? आप उसे उत्तर देंगे या आप भागेंगे वैद्य को बुलाने? आप जानते हैं, खाट उड़ ही नहीं रही है। यह आदमी सन्निपात में है। इसको उत्तर की जरूरत नहीं है, उपचार की जरूरत है। आप जायेंगे वैद्य को बुलाने। वह आदमी कहेगा, पहले मेरा उत्तर चाहिए, खाट पूरब में उड़ती है या पश्चिम में? आप कहेंगे, ठहरो अभी, थोड़ी देर बाद उत्तर देंगे। थोड़ी चिकित्सा होने दो, फिर होश में आ जाओ, फिर पूछो तब हम उत्तर देंगे। और उसकी चिकित्सा होती है, वह होश में पुनः आ जाता है। अब आप उससे कहते हैं कि पूछो, खाट कहां उड़ रही है, तो हम उत्तर देंगे। अब आदमी कहता है, खाट उड़ ही नहीं रही थी, पूछें हम क्यों? यहीं बात खत्म हो जाती है।

मनुष्य के सारे प्रश्न सन्निपात में पूछे गये हैं और सारी फिलासफी सन्निपात में लिखी गयी है। सारा शास्त्र और सारा दर्शन और सारी हजार तरह की सिस्टम, सब सन्निपात में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर हैं। जानना वहां है जहां कि सन्निपात मिट जाता है, पूछने का ज्वर ही चला जाता है। मैं कोई उत्तर नहीं दे रहा हूं और मैं आपसे कह रहा हूं कि आप पूछें कि मैं

कौन हूं, आपको उत्तर मिल जायेगा। नहीं, इस तीव्र जिज्ञासा की आग में पूछते-पूछते सब प्रश्न, सब उत्तर गिर जायेंगे। अंत में रह जायगा वही जो है, और वही उत्तर है, लेकिन वह उत्तर आता नहीं है। आप ही बच जाते हैं, आप ही उत्तर हो जाते हैं। जब यह रुग्ण है चित्त, तो आप प्रश्न हैं। चित्त होगा स्वस्थ, तो आप ही उत्तर होंगे। उत्तर और प्रश्न का मिलन कभी नहीं होता है, क्योंकि रुग्ण चित्त और स्वस्थ चित्त का मिलन नहीं होता है। जब रुग्ण चित्त चला जाता है, तब स्वस्थ चित्त आता है। इसलिए जबतक कोई प्रश्न पूछता है तबतक उत्तर नहीं है और जब उत्तर आता है तब प्रश्न बहुत पहले ही विदा हो जाते हैं। इनका मिलना ही कभी नहीं हुआ। तो ध्यान में रख लेना, उत्तर और प्रश्न इन दोनों का मिलन ही कभी नहीं हुआ। जबतक प्रश्न है भीतर तबतक जानना उत्तर नहीं हो सकता। जिस दिन उत्तर होगा उसके बहुत पहले उत्तर जा चुका होगा।

यह जो जिज्ञासा, 'इन्क्वायरी' और खोज के लिए कहा जा रहा है वह सब इसीलिए है कि सब उत्तर गिर गये हैं। सब उत्तर गिर जायं, सब नेति-नेति हो जाय। नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं, 'नाट दिस, नाट दैट' सब गिर जाय, सब निषेध हो जाय, सब उत्तर गिर जायं, फिर अकेला प्रश्न रह जाय। तो अकेला प्रश्न कैसे जियेगा? प्रश्न जीता है उत्तर मिलता है इसलिए, यह कभी आपने ध्यान नहीं किया होगा। एक प्रश्न पूछिये, एक उत्तर दिया जायगा। उस उत्तर के बाद दस प्रश्न खड़े हो जायेंगे। दस प्रश्नों के दस उत्तर। हजार प्रश्न और खड़े हो जायेंगे। हर उत्तर नये प्रश्न खड़ा करेगा। अगर गौर से देखा जाय तो पता चलेगा कि जबतक उत्तर मिलता है, प्रश्न नयी संतति पैदा कर लेता है। अबतक दुनिया में जितने उत्तर दिये गये सबने नये प्रश्न खड़े किये हैं। कोई उत्तर उत्तर नहीं है। जैसे अंडे से मुर्गी निकलती है और मुर्गी से फिर अंडे निकलते हैं, वैसे प्रश्न से उत्तर निकलता है, उत्तर से फिर प्रश्न निकलते हैं, प्रश्न से फिर उत्तर निकलते हैं। वह अंडे और मुर्गी का संबंध प्रश्न और उत्तर का संबंध भी है। अंत नहीं आता है, और जो उत्तर अंत नहीं आता है क्या वह उत्तर हो सकता है! खोज हमारी उसकी है जो अंतिम है, 'अल्टीमेट' है, जिसके आगे पूछने को नहीं बचता है। लेकिन ऐसा उत्तर पूछने से नहीं आ सकता है। ऐसा उत्तर पूछना भी छूटना चाहता है। लेकिन पूछना भी उन्हीं का छूट सकता है जिन्होंने पूछा है। जिन्होंने पूछा ही नहीं है उनका छूटेगा कैसे? अतः तीव्र जिज्ञासा चाहिए अपने भीतर कि पूछते जायें — कौन हूं मैं?

कौन हूं? कौन हूं? पूछते चले जायें, पूछते चले जायें जल्दी जल्दी। बीच बीच में उत्तर चले आयेंगे। मन कहेगा, अरे मालूम है कि कौन हूं? उन उत्तरों को मत स्वीकार करना, क्योंकि उन उत्तरों के स्वीकार करने से प्रश्न कभी नहीं मरेगा, फिर नये प्रश्न खड़े हो जायेंगे। मन कहेगा--आत्मा हो तुम, और अगर स्वीकार कर लिया तो हम पूछेंगे कि आत्मा मरती है कि नहीं? आत्मा कहां से आयी? भगवान ने आत्मा क्यों बनायी? भगवान कौन है? उत्तर तो नये प्रश्न बनाते चले जायेंगे। इसलिए उत्तर तो स्वीकार ही नहीं करना है। सिर्फ कमजोर लोग उत्तर स्वीकार करते हैं, बलशाली लोग उत्तर स्वीकार नहीं करते। वह प्रश्नों को पूछते चले जाते हैं। कमजोर और आलसी उत्तर स्वीकार करते हैं, क्योंकि उत्तर स्वीकार करने से वे कहते हैं अब खोज की कोई जरूरत नहीं। अब आगे और क्या पूछना है, बस खत्म करो। लेकिन जो अंत तक पूछने को राजी है वह आखिर में सारे उत्तरों के ऊपर चला जाता है और फिर अंत में प्रश्न के भी ऊपर। जैसे एक दिया जलाया। दिये की बाती जलनी शुरू हुई, लेकिन बाती नहीं जलती, तेल जलता है। बाती पर तेल चढ़ता जाता है, तेल जलता जाता है। रात भर बाती तेल से जलाते हैं फिर तेल जल जाता है, फिर बाती जलने लगती है। जब तेल खत्म हो जाता है, फिर बाती जलने लगती है। जिस बाती ने सारे तेल को जलाया उसे पता भी नहीं होगा कि तेल को जला के वह अपनी मौत बुला रही है। जब तेल जल जायेगा तो फिर बाती को जलना पड़ेगा। इस बाती को पता भी नहीं है कि मैं तेल को जलाकर अपनी ही मौत का आयोजन कर रही हूं। आत्महत्या हो जायेगी उसकी, क्योंकि तेल जैसे ही खत्म हुआ, फिर बाती जलेगी। अभी बाती अपनी रक्षा कर रही है और तेल को जला रही है। रात भर तेल जलकर समाप्त हो जायेगा। फिर बाती जलेगी और राख हो जायेगी। पहले बाती तेल को जलाती थी और अंत में खुद जल जायेगी।

ठीक ऐसे ही प्रश्न पहले उत्तरों को गिराते हैं—यह भी उत्तर ठीक नहीं, यह भी उत्तर ठीक नहीं, यह भी उत्तर ठीक नहीं। लेकिन प्रश्न को पता नहीं कि जब सभी उत्तर ठीक नहीं रह जायेंगे, आखिर में जब सभी उत्तर जल जायेंगे, तो प्रश्न भी जलने के क्षण तक पहुंच जायेगा। आखिर में जब सब उत्तर गिर जाते हैं, तो फिर प्रश्न किसके सहारे खड़ा रहे? फिर प्रश्न भी गिर जाता है। पहले पता चलता है उत्तर गलत है, फिर पता चलता है प्रश्न भी व्यर्थ है। और जब प्रश्न नहीं रहते और उत्तर नहीं रहते, तो वही

रह जाता है 'जो है'। इसलिए जिज्ञासा और खोज के लिए मैंने कहा है।

★

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि मैं कहता हूं, क्रोध, लोभ इत्यादि का कोई नियम, कोई नियंत्रण, कोई संकल्प, कोई व्रत नहीं लेना चाहिए, जैसे कि आज से मैं क्रोध नहीं करूंगा। उन्होंने पूछा है कि एक तरफ तो आप यह कहते हैं कि ऐसा संकल्प नहीं करना चाहिए और दूसरी तरफ आप कहते हैं कि संकल्प की शक्ति होनी चाहिए।

इन दोनों बातों में उन्हें विरोध मालूम पड़ा। इसे समझ लेना ठीक होगा। पहली बात, जो आदमी यह कहता है कि आज से मैं क्रोध नहीं करूंगा वह ऐसा क्यों कहता है? उसे पता है कि वह क्रोध करेगा इसी लिए कहता है न? उसे मालूम है कि वह करेगा इसलिए संकल्प लेता है। अगर उसे पता हो कि कल से क्रोध होना ही नहीं है, तो वह व्रत नहीं लेगा। आपने कभी कसम खायी है कि आज से कभी दीवाल से नहीं निकलूंगा, दरवाजे से ही निकलूंगा। आपने कभी कसम नहीं खायी है, क्योंकि आप जानते हैं कि दीवाल से कभी निकलते ही नहीं। दरवाजे से ही निकलते है। जब एक आदमी कहता है कि मैं कल से क्रोध नहीं करूंगा तब वह आदमी जानता है कि कल मैं क्रोध करने वाला हूं, उसी के खिलाफ वह संकल्प लेता है। संकल्प किसके खिलाफ ले रहे हैं, किसी दूसरे के खिलाफ? नियंत्रण, व्रत, नियम सब अपने ही खिलाफ किये जाते हैं। मुझे पता है, मैं कल भी क्रोध करूंगा, भलीभांति पता है और जितने जोर से मुझे पक्का विश्वास है कि कल क्रोध करूंगा उतने ही जोर से मैं कसम खाता हूं कि कल नहीं करूंगा क्रोध। किसके खिलाफ कर रहा हूं? अपने ही खिलाफ। और अपने खिलाफ जो आयोजन होता है उसमें व्यक्तित्व टूट जाता है। एक व्यक्तित्व कहता है, नहीं करूंगा और दूसरा व्यक्तित्व कहता है कि करूंगा। अब इसको भी थोड़ा ध्यान से समझ लेना कि मैं क्रोध करूंगा, यह संकल्प कभी आपने लिया था जिन्दगी में? कभी आपने यह व्रत लिया था कि मैं क्रोध करूंगा? यह आपने कभी नहीं लिया था, यह नैसर्गिक था और अब यह व्रत आप ले रहे हैं कि मैं क्रोध नहीं करूंगा — यह नैसर्गिक नहीं है, यह कृत्रिम है। जो बात नैसर्गिक होगी वह मजबूत सिद्ध होगी, जो कृत्रिम होगी वह मजबूत सिद्ध नहीं होगी। नैसर्गिक और कृत्रिम की लड़ाई जब होगी तो कृत्रिम हारेगा और नैसर्गिक जीतेगा। आप अपने को दो हिस्सों

में तोड़ रहे हैं। आपका निसर्ग, आपकी प्रकृति कह रही है कि करेंगे क्रोध और आपकी सीखी हुई बुद्धि, आपका चैतन्य चित्त कह रहा है कि नहीं, अब हम क्रोध नहीं करेंगे। आपको पता नहीं है कि प्रकृति बहुत बलवान है और आपके ये संकल्प बहुत अकिंचन हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है। कल जब क्रोध का झंझावात आयेगा तब संकल्प पता नहीं कहां उड़ जायेगा सूखे पत्तों की तरह। जैसे एक सूखा पत्ता जमीन पर पड़ा है। अभी हवा नहीं चल रही है और वह सूखा पत्ता कहता है—कसम खाते हैं, अब नहीं उड़ेंगे। अब कसम खाते हैं, कल से चाहे कुछ भी हो जाय उड़ेंगे नहीं। सूखा पत्ता सड़क पर कसम खा रहा है। अभी हवा नहीं चल रही है। लेकिन पत्ता कसम क्यों खा रहा है कि नहीं उड़ेंगे? पत्ते को पुराना अनुभव है, जब भी हवा चली है, उड़ना पड़ा है। पत्ते को पता नहीं है कि वह सूखा पत्ता है, उसकी ताकत ही कितनी है! अगर प्रकृति का झंझावात और आंधी उठेगी और हवाएं चलेंगी तब कहां इसकी कसम रहेगी? जरा भी हवा आयेगी, पत्ता उड़ने लगेगा। जब हवा बंद हो जायेगी, पत्ता गिर जायेगा। फिर हवा चलेगी, पत्ता फिर मन में कहेगा, आज व्रत टूट गया लेकिन कल से अब पक्का व्रत करते हैं। कल किसी संन्यासी के पास, किसी मुनि के पास जाकर हाथ जोड़कर मंदिर म प्रार्थना करके कसम खायेंगे कि अब हम अणुव्रत लेते हैं कि अब नहीं उड़ेंगे। इस पत्ते का क्या मतलब है? जिस चेतन मन में हमने सारी बातें कही हैं उसकी ताकत क्या है? वह जो अचेतन प्रकृति हमारे भीतर खड़ी है उसकी भी तो बड़ी ताकत है। आपके व्रत का आपके अचेतन मन में पता भी नहीं रह जायेगा। अभी आपने कसम खा ली कि कल से क्रोध नहीं करेंगे और आज आपका नींद में व्रत भंग हो गया। आपको नींद में व्रत का क्या पता होगा? क्योंकि जिस मन ने कसम खायी है वह बहुत छोटा-सा मन है और जिस मन ने कसम नहीं खायी है वह बहुत बड़ा मन है। वह नींद में भी जागा होगा। नींद में भी क्रोध चलेगा, नींद में भी छुरा मारा जायगा, नींद में भी हत्या होगी।

मनुष्य की प्रकृति के रूपांतरण का सवाल है, मनुष्य के निर्णय का नहीं। प्रकृति बड़ी है, निर्णय हमेशा कमजोर है। तो मैं कहता हूं, निर्णय मत लेना। समझ लो प्रकृति को कि क्या है मेरी प्रकृति? जो व्यक्ति अपने चित्त की पूरी प्रकृति को समझ लेता है, जागरूक हो जाता है, पूरे चित्त को पहचान लेता है वह कसम नहीं खाता है। वह यह नहीं कहता कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा। वह यह कहता है कि क्रोध गया, अब क्रोध कैसे करूंगा? अगर मौका

आ जायगा तो क्रोध कैसे करूंगा? जो भी अपने भीतर क्रोध को समझ लेता है वह यह कहेगा — अब बड़ी मुश्किल हो गयी, कल अगर मौका आ गया तो क्रोध कैसे करूंगा? क्योंकि समझने के बाद क्रोध करना असंभव है। यह ऐसा ही है, जैसे जानते हुए गड्ढे में गिरना। आंखें खुली हैं और कांटों में चले जायें, यह वैसा ही है। आखें खुली हैं और दीवाल से टकरा जायें, यह वैसा ही है। जानना है, संकल्प नहीं लेना है।

जितना आप संकल्प लेंगे उतनी ही संकल्प शक्ति क्षीण होती है। संकल्प शक्ति विकसित नहीं होती है संकल्प लेने से। असल में जब सब संकल्प-विकल्प गिर जाते हैं तब संकल्प लेना नहीं पड़ता है। संकल्प शक्ति होती है जिसके भीतर तो जो भी उसके पूरे प्राण चाहते हैं वह हो जाता है। उसको निर्णय नहीं लेने पड़ते हैं कि ऐसा हो, ऐसा मैं करूं। उसका पूरा काम जो चाहता है वह हो जाता है। उसके भीतर संकल्प का अर्थ है जिसके भीतर विकल्प नहीं रह गये। जिस आदमी के चित्त में विकल्प उठते ही नहीं उसके भीतर संकल्प है। विकल्पों से विदा होने पर संकल्प रह जाता है। संकल्प का मतलब है वही ऊर्जा, वही शक्ति जो परमात्मा की है, वही काम करने लगती है। फिर आदमी ऐसा नहीं कहता है कि मैं ऐसा करूंगा। वह कहता है कि ऐसा हो रहा है। वैसा आदमी चुनाव भी नहीं करता। वह यह भी नहीं कहता कि मैं फलां चीज छोड़ता हूं। क्योंकि हम छोड़ते उसी चीज को हैं जिसके पीछे हमारा कोई लगाव होगा। जब एक आदमी कहता है कि मैं बायें जाऊं कि दायें तो उसके भीतर जो निर्णय होता है वह बहुमत का निर्णय है, डेमोक्रेटिक निर्णय है। पचास प्रतिशत दिमाग कहता है कि चलो, बायें चलो, ४९ प्रतिशत दिमाग कहता है कि दायें चलो। फिर वह बायें चला जाता है। दस-पच्चीस कदम गया है तो लगता है कि कहीं भूल तो नहीं हो गयी है। ४९ प्रतिशत कहने लगता है कि गलती हुई जा रही है, इसी पर चलते तो बहुत अच्छा था। यह आदमी डोलता है। यह कभी तय नहीं कर पाता है। ऐसे लोग ऐसे हैं कि घर में ताला लगाकर निकलते हैं, दस कदम के बाद ख्याल आता है कि फिर से लौटकर देख लें कि ताला ठीक से लगा है कि नहीं; क्योंकि दिमाग कहता है, देखा था कि नहीं देखा था। एक हिस्सा कहता है कि देखा तो था, लेकिन दूसरा हिस्सा कहता है कि संदिग्ध है, चलें लौटकर देख लें। लेकिन वह आदमी यह नहीं जानता कि लौटकर देख लेने पर फिर दस कदम बाद यही हालत हो जायेगी। कुछ लोग

जिन्दगी भर लौट-लौट कर ताला ही देखते रह जाते हैं और निरंतर विकल्प करते रहते हैं; यह करो, यह करो, उनके दिमाग में ही चलता रहता है।

एक बहुत बड़ा विचारक था। वह जिस गांव में रहता था उस गांव के लोगों ने उसका नाम 'इदर–आर' रख छोड़ा था। चौरस्ते पर खड़ा है और सोच रहा है कि इस रास्ते जाऊं कि इस रास्ते जाऊं। उसने एक किताब लिखी है जिसका नाम 'इदर–आर' है, यह या वह। सारा गांव चिल्लाता था, वह 'इदर–आर' जा रहे हैं। उस 'इदर–आर' का एक लड़की से प्रेम हो गया और वह सोचता ही रहा कि शादी करूं या न करूं। दसियों साल तक सोचता रहा। तबतक लड़की की शादी हो गयी, उसके लड़के-बच्चे भी शादी योग्य हो गये। तब वह पक्का कर पाया कि कर लेनी चाहिए शादी। फिर वह गया उसके पास, तो पता चला कि लड़की का तो विवाह भी हो चुका है, उसके बच्चे भी बड़े हो चुके हैं। 'इदर-आर' से कहा गया, तुम गये कहां थे? उसने कहा, "मैं हिसाब लगाता रहा कि शादी करनी चाहिए कि नहीं करनी चाहिए।"

यह जो मस्तिष्क है, विकल्प से भरा हुआ मस्तिष्क, जो हमेशा कहता है– यह या वह, और हमेशा डोलता है दोनों तरफ। हर वक्त डोलता रहता है, हर चीज में डोलता रहता है। कमीज तक पहनता है आदमी, तो एक निकालता है फिर उसको रख देता है। फिर दूसरी निकालता, फिर पहनकर आईने के सामने खड़ा होता है, फिर उसे भी रख देता है और तीसरी निकालता है। वह 'इदर-आर' पूरे वक्त दिमाग को खाये जा रहा है। ऐसा आदमी कैसे संकल्प को उपलब्ध हो सकता है? पति बाहर हार्न बजा रहा है कि गाड़ी चूकी जाती है। पत्नी कहती है सवाल गाड़ी का नहीं है, स्टेशन पर बहुत से लोग होंगे, इसलिए साड़ी का सवाल है। वह तय नहीं कर पा रही है कि कौन सी साड़ी पहने, क्योंकि बहुत साड़िया हैं पेटी में नीचे से ऊपर तक। तो वह तय नहीं कर पा रही है कि कौन सी साड़ी पहने। 'इदर-आर' है दिमाग पर, हर छोटी चीज पर। अगर आप भी यह तय कर लें कि मैं पक्का निर्णय ही कुछ करूंगा तो जिन्दगी भर कुछ नहीं कर पायेंगे, क्योंकि पक्का निर्णय होने वाला नहीं है। कुछ हिस्सा भीतर का कहता रहेगा– यह भी कर लो, शायद वह ठीक हो। वह तो अच्छा है कि मौत आपसे पूछती नहीं, आ जाती है। वरना आदमी अधमरे पड़े रहेंगे वर्षों, सैकड़ों वर्षों तक और तय नहीं कर पायेंगे कि मरें कि नहीं। तो मौत आती है। वह पूछती नहीं और ले जाती है।

सिर्फ मौत आपको कोई विकल्प नहीं देती है। इसीलिए मौत का सबसे ज्यादा डर लगता है, इसीलिए हम उससे भयभीत रहते हैं; क्योंकि वह हमसे पूछती नहीं कि आपको क्या करना है।

मैंने सुना है, एक लकड़हारा जंगल से लकड़ी काट के लौट रहा था। और रोज–रोज कई बार कहता था, हे भगवान, मुझे तू मार डाल, उठा ले इस दुनिया से। लकड़ी ढोते–ढोते जिन्दगी खराब हो गयी। जिन्दगी भर यही करता रहूंगा क्या ? आज भी वह लकड़ी ढोकर लाया है, सिर पर भार है, पसीना चू आया है, बूढ़ा आदमी है, एक जगह आकर लकड़ियों का गट्ठर टेककर उसने कहा, "हे भगवान, अब तो मुझे उठा ले, अब मुझे रहने की कोई जरूरत नहीं।" भाग्य की बात कि मौत उस रास्ते से गुजर रही थी। उसने सुन लिया। सोचा, यह बेचारा बहुत दिन से बुलाता है, चलो इसको लेते चलें। तो मौत उसके पास आयी। उसने कहा, मैं आ गयी हूं। लकड़हारे ने कहा, तू कौन है? उसने कहा, मैं मौत हूं, तू बहुत दिन से बुलाता था, आज रास्ते पर मिल गये, मैं जा रही थी दूसरी जगह, चलो तुम्हें ले चलती हूं। उस बूढ़े ने कहा, "ठहर, ठहर मैंने तुझे बुलाया जरूर; लेकिन बुलाया इसलिए कि रास्ते पर कोई दिखायी नहीं पड़ता था। यह जो गट्ठर है यह उठा दे मेरे सिर पर। और कोई काम नहीं है। जिन्दगी में आइन्दा कभी ऐसी बात नहीं करूंगा। मैं तो तुझे इस गट्ठर को उठवाने के लिए बुला रहा था।"

वह हमारा जो चित्त है, उस चित्त की चंचलता का और कोई अर्थ नहीं हैं। चित्त की चंचलता का हमेशा एक ही अर्थ है कि चित्त हमेशा 'इदर-आर' में सोचता है, यह या वह और दोनों पर डोलता है। ऐसा डोलने वाला चित्त विकल्प चित्त कहलाता है– विकल्पवान। जब चित्त ऐसी दशा में पहुंचता है, जहां 'यह वह' दोनों समाप्त हो जाते हैं, जो है वह परिपूर्ण टोटल, इन्टीग्रेटेड है, कोई विरोधी स्वर नहीं होता– तब वह चित्त संकल्पवान होता है। संकल्प उन्हें उपलब्ध होता है जो विकल्प से मुक्त हो जाते हैं। लेकिन आप कहते हो कि मैं सिगरेट छोड़ के रहूंगा, मैं कसम खाता हूं सिगरेट नहीं पियूंगा। आप विकल्प खड़ा कर रहे हैं। एक मन कह रहा है कि मैं सिगरेट पियूंगा, उसी के खिलाफ आप दूसरा विकल्प कर रहे हैं कि नहीं पियूंगा। आप विकल्प खड़ा कर रहे हैं। आपकी संकल्प शक्ति कम होगी, बढ़ेगी नहीं। आप यह मत समझना कि इससे संकल्प बढ़ जायेगा, इससे संकल्प शक्ति क्षीण होगी,; क्योंकि रोज–रोज आप कसम लेंगे और रोज –रोज कसम टूटेगी और अंततः आप पायेंगे कि व्यक्तित्व सारा टूट गया है। संकल्प का अर्थ है–

जहां विकल्प नहीं है, जहां कोई 'आल्टरनेटिव' नहीं है।

बंगाल में एक बहत बड़ा व्याकरण का ज्ञाता हुआ है। उसके बाप ने बेटे की साठवीं वर्ष गांठ पर उससे कहा कि क्या तू इस व्याकरण में ही उलझा रहेगा, यह धन्धा तू छोड़ और भगवान का स्मरण कर। उस बेटे ने जो साठ वर्ष का बूढ़ा था, बाप से जो ९० साल का होगा, कहा--करूंगा एक दिन, लेकिन सिर्फ एक बार, बार-बार नहीं। क्योंकि बार-बार स्मरण करने से मतलब क्या है ? तुम्हें मैं देख रहा हूं वर्षों से, सुबह से शाम तक भगवान का स्मरण करते हो। कुछ हुआ तो नहीं। और तुम बड़े अजीब हो। तुमने जब पहली दफा स्मरण किया था और जब पहली दफा नहीं हुआ तो उसी स्मरण को बार-बार करने से फायदा क्या है? जब होना था तो पहली बार ही हो गया होता। नहीं हो रहा है, फिर भी किये चले जा रहे हो। मैं एक बार करूंगा। एक बार सिर्फ। दोबारा नहीं करूंगा। बाद में जब उसकी ६५ वीं वर्षगांठ आई तो वह उठा। उसने अपने पिता के चरण छुए और कहा कि मैं मन्दिर जा रहा हूं। शायद आज स्मरण का दिन आ गया है इसलिए आपके चरण छूता हूं। बाप ने कहा, इसमें चरण छूने की क्या बात है ? उसने कहा, लौटना मुश्किल है क्योंकि जा रहा हूं। बाप ने कहा, मतलब क्या है तेरा? उसने कहा मतलब साफ है। जब मन्दिर जा रहा हूं तो घर कैसे लौटूंगा ! बाप ने कहा, पागल हो गये हो? मैं रोज लौटता हूं। क्या मंदिर जाने से लौटने में बाधा होती है? बेटे ने कहा, आप मन्दिर गये ही नहीं। नहीं तो लौटते कैसे? बाप हंसा कि पागल है। कभी तो गया नहीं मन्दिर और आज ऐसी बातें करता है ! लेकिन उसी रात गांव के लोगों ने दौड़ के बाप को खबर दी कि तुम्हारा लड़का मरा हुआ पड़ा है मंदिर में। बाप ने कहा, यह क्या हो गया ! सारा का सारा गांव इकट्ठा हो गया। मंदिर के पुजारी ने कहा, आज वह पहली दफे तो यहां आया था और हाथ जोड़ के खड़ा हुआ और भगवान से कहने लगा, "एक बार पुकारता हूं, सुनते हो तो सुन लो। नहीं सुनते हो तो बात खत्म ! फिर दोबारा मैं तेरी तरफ लौटकर देखूंगा भी नहीं।" और उसने एक बार आंख बन्द की और उसकी सांस जो बाहर गयी तो पीछे नहीं लौटी।

इसको कहते हैं संकल्प। संकल्प का मतलब क्या होता है ? संकल्प का मतलब होता है 'इन्टीग्रेटेड माइंड'। पूरा का पूरा, 'टोटल', समग्र चित्त जब कोई एक स्वर से भरता है तब संकल्प की स्थिति होती है और संकल्प जो चाहता है वही हो जाता है। संकल्प के लिए कोई बाधा नहीं है। हम तो विकल्पों में जीते हैं और एक विकल्प

को पकड़ते और दूसरे के खिलाफ कहते हैं कि मैं संकल्प कर रहा हूं। यह संकल्प नहीं है।

एक और बात। छोटी-छोटी बातों को लेकर अपने मन को खण्ड - खण्ड में मत तोड़ना। क्योंकि खंडित मन कमजोर मन है। जितने खण्ड टूट जायेंगे, मन उतना ही अशक्त और निर्वीर्य हो जाता है। मन चाहिए अखण्ड। अखण्ड चित्त ही व्याप्त खण्ड से जुड़ने में समर्थ हो पाता है। लेकिन यह मत समझ लेना कि मैं कहता हूं कि क्रोध करो। जो भी करना हो करो। क्योंकि संकल्प करने में ही व्रत लेना नहीं है। साधु-संन्यासी समझते हैं पूरे मुल्क में कि मैं लोगों को क्रोध करने को, वासना में उतरने आदि के लिए प्रयोग करने को कह रहा हूं। मैं लोगों से कह रहा हूं व्रत मत लो, नियम मत लो और जो ठीक लगे करो। मैंने कभी नहीं कहा कि कि व्रत और नियम लेने के बाद तुम क्रोध ही करते रहोगे। काम में ही उलझे ही रहोगे। मेरा कहना है, व्रत और नियम से कभी कोई क्रोध, लोभ, काम से मुक्त नहीं हुआ है। यानी मैं यह कह रहा हूं कि व्रत मत लो—क्रोध को, काम को समझो। समझते ही मुक्त हो जाओगे। नियम सिर्फ नासमझ लेते हैं। समझदार आदमी कभी नियम नहीं लेता, समझ को विकसित करता है। समझ ही नियम बन जाती है। नियम अकेला कुछ नहीं बना पाता। सिर्फ जड़-बुद्धि, मन्द-बुद्धि व्रत लेते हैं। बुद्धिमान कभी व्रत नहीं लेता। क्योंकि बुद्धिमानी स्वयं व्रत है। बुद्धिमान लोगों को इसलिए अलग से व्रत नहीं लेने पड़ते। बुद्धिमानी स्वयं संयम है। बुद्धिमान को संयम की, नियम की कसमें नहीं खानी पड़ती हैं।

धर्म के नाम पर मन्द-बुद्धि का प्रयोग चल रहा है। और जो अभी व्रत लेता है, कसम खाता है, संघर्ष करता है कि ऐसा नहीं करूंगा, ऐसा करूंगा ऐसे आदमी अपने मस्तिष्क को, अपनी बुद्धि को मन्द करने की दिशा में ले जाते हैं। अगर बिल्कुल ही जड़ता पानी हो तो नियम-व्रत आदि बड़े सहयोगी हैं। अगर सारा गौरव खोना हो; विवेक का, बुद्धि का सारा प्रकाश खोना हो; अगर वह ऊर्जा, वह गरिमा जो मनुष्य के भीतर छिपी है विवेक की, 'अंडरस्टैंडिंग' की वह सब नष्ट करनी हो तो व्रत लेना, संयम लेना, नियम लेना। और ध्यान रखना संयम, नियम और व्रत कभी भी संयमी नहीं बना सकेंगे। न नियमी ही बना सकेंगे, न व्रती बना सकेंगे। यह बड़ी उल्टी बात मालूम पड़ती है। महावीर को देखें, बुद्ध को देखें, जीसस को या कृष्ण को देखें तो ऐसा मालूम पड़ता है कि बड़े नियम के आदमी हैं। नियम के आदमी बिल्कुल नहीं हैं। महावीर से ज्यादा बिना नियम का आदमी

खोजना मुश्किल है। लेकिन हम कहेंगे कि महावीर तो इंच-इंच नियम का पालन करते हैं। बुद्ध इंच-इंच नियम का पालन करते हैं। हर रोज पांच बजे सुबह उठते हैं ब्राह्म मुहूर्त में, तो हमको भी कसम खानी चाहिए कि रोज पांच बजे ब्राह्म मुहुर्त में उठेंगे। लेकिन कभी आपको पता है कि महावीर ने ब्राह्म मुहूर्त में उठने की कसम नहीं खायी। महावीर इतने गहरे सोते हैं कि ब्राह्म मुहूर्त में उठ जाते हैं। ब्राह्म मुहूर्त तक नींद पूरी हो जाती है और उठ जाते हैं। और आप खायेंगे कसम कि हम पांच बजे उठेंगे। वह कसम पांच बजे उठा देगी, लेकिन दिनभर सोये हुए रखेगी। दिनभर झपकियां आती रहेंगी। क्योंकि महावीर की नींद कहां है आपके पास ? महावीर की नींद हो तो ब्राह्म मुहूर्त में नींद खुलती है। और महावीर की नींद न हो तो ब्राह्म मुहूर्त में नींद खोलनी होती है। और जो खोलनी पड़े वह नींद झूठी है। इससे बेहतर है सो जाना। सात बजे ही उठना, कोई हर्जा नहीं है। कम से कम दिन भर तो जागे हुए होगे। मैं चाहता हूं कि पांच बजे नींद खुले इसकी समझ विकसित होनी चाहिए और नींद खुल जाय अपने आप। जो नींद अपने आप खुलती है वही नींद सम्यक नींद है। जिस नींद को खोलना पड़ता है वह नींद गड़बड़ हो जाती है, विकृत हो जाती है।

एक पंजाबी महिला मेरे पास आयी और उसने मुझसे कहा कि किसी भांति मेरे पति को थोड़ा कम धार्मिक बनाइए। वह जानती है कि मैं लोगों को कम धार्मिक बनाता हूं, इसलिए कहने लगी— किसी तरह थोड़ा मेरे पति का 'रिलीजन' कम हो जाय तो हम पर बड़ी कृपा होगी। हमारा पूरा घर पागल हुआ जा रहा है। (एक घर में एक आदमी धार्मिक हो जाय तो पूरा घर पागल होने लगता है, तथाकथित धार्मिक अगर एक आदमी हो गया पूरे घर में तो पूरे घर का दुर्भाग्य समझें, वह पूरे घर को दिक्कत में डाल देगा। उसके नियम, उपवास, व्रत आदि का ऐसा चक्कर चलेगा कि उस घर में शांति से रहना किसी को भी संभव नहीं है।) तो मैंने पूछा, तकलीफ क्या है तुझे ? तो उसने कहा, वह दो बजे रात उठते हैं और जपजी का पाठ करते हैं इतने जोर-जोर से कि मुहल्ले के सब लोग आकर कहते हैं कि हमारी नींद हराम कर डाली। घर में न बच्चे सो सकते हैं न हम सो सकते हैं। दिन भर स्कूल में बच्चों को नींद आती है क्योंकि उनके जपजी के मारे मुसीबत हो गयी है। आप मेरे पति को समझा दें कि थोड़ा कम धार्मिक हो जायं तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी। उसके पति को मैंने बुलाया। मैंने कहा, कब उठते हो ? उन्होंने कहा, ठीक दो बजे। और बहुत प्रसन्नता से

मुस्करा कर बोले कि आप तो मेरी बात को शाबाशी देंगे। मेरी पत्नी जान खाये जा रही है। लेकिन ऐसा सदा होता रहा है कि धार्मिक पुरुषों की पत्नियां हमेशा पीछे खींचती हैं। पत्नियाँ ही संसार की तरफ लाती हैं लोगों को भगवान की तरफ से। फिर यह तो होता रहा है, मैं सुनने वाला नहीं और कोई बुरा काम तो करता नहीं हूं, जपजी का पाठ करता हूं। मैंने कहा, धीरे करते हो कि जोर से ? उन्होंने कहा, मैं तो जोर से करता हूं क्योंकि पत्नी, बच्चे सबको अनायास लाभ हो जाता है। उनके जैसे और भी कई लोग हैं जो अनायास कई लोगों को लाभ दे रहे हैं। माइक लाउडस्पीकर लगाकर अखण्ड रामायण चलाते हैं, अखण्ड राम नाम चलाते हैं। वे सारे मुहल्ले वालों को राम नाम का फायदा देते हैं। सारा मुहल्ला गाली देता है, बच्चे परीक्षाओं में फेल हो जाते हैं और वह राम नाम को अखण्ड चला रहे हैं, वह सबका कल्याण कर रहे हैं। मैंने उनसे कहा कि तुम तो माइक लगाकर जपजी का पाठ करो, तो मुहल्ले वालों को बहुत फायदा होगा। लेकिन एक बात ध्यान रखना, आजकल जो माइक वगैरह लगाकर अखण्ड रामायण करते हैं, सबको नरक जाना पड़ता है, क्योंकि वे इतने लोगों को तकलीफ पहुंचाते हैं। मैंने उनसे कहा, थोड़ा समझो। यह क्या पागलपन मचा रखा है ! दिन में क्या हालत रहती है ? उन्होंने कहा, दिनभर नींद आती है। और शास्त्रों में लिखा है कि जिसको दिन में नींद आती है वह तामसी प्रवृत्ति का आदमी होगा, तो मेरी तामसी प्रवृत्ति है और मैं उससे ही लड़ रहा हूं।

यह जो इस तरह के नियम लेने वाले लोग हैं वह किसी भी चीज में नियम लेंगे। उससे वह अपने को भी नुकसान पहुंचायेंगे, पास-पड़ोस में भी सबको नुकसान पहुंचायेंगे। नियम नहीं लिए जाते, समझ होनी चाहिए और समझ विकसित हो तो आदमी ठीक समय पर उठेगा, ठीक समय पर सोयेगा, ठीक खायेगा, ठीक पियेगा, ठीक बोलेगा, ठीक बैठेगा – लेकिन समझ से। नियम लेना थोपा हुआ अनुशासन होगा। हम थोपे हुए अनुशासन को अबतक मानते रहे हैं और इसलिए नियम ने सारी मनुष्य जाति को विकृत, कुरूप, अपंग, भटका हुआ कर दिया है। नहीं, ऊपर से थोपा हुआ कोई अनुशासन नहीं चाहिए। समझ से, भीतर से आया हुआ अनुशासन चाहिए। वह अनुशासन जुदा तरह का होगा। उसमें उतना ही फर्क होता है जैसे कोई बाजार से कागज के फूल खरीद लाये और किसी के घर में गुलाब के फूल खिले हों। बाजार में भी गुलाब के फूल कागज के मिलते हैं। वह अच्छे भी होते हैं। एक तो अच्छाई उनकी यह होती है कि उनमें कांटे नहीं

होते हैं, दूसरी अच्छाई यह होती है कि वह मुर्झाते नहीं, तीसरी अच्छाई यह होती है कि कितने ही दिन रखे रहो वैसे ही बने रहते हैं। लेकिन एक ही खराबी उनमें होती है – वह कागज होते हैं, फूल नहीं होते हैं। असली फूल आता है पौधे के भीतर से, जमीन की गहराइयों से आता है, जड़ों से आता है, अनजान-अज्ञात लोक से आता है और प्रकट होता है, खिलता है। वह भीतर से आया हुआ फूल है। कागज के फूल बाहर से लाये गये, लगाये गये फूल हैं। नियम और व्रत लेने वाले लोग कागजी किस्म के लोग हैं, जापानी किस्म के, ऊपर से सब लगाया हुआ, उनके भीतर से कुछ भी नहीं आया है, सब बाजार से खरीदकर लाया गया है और ऊपर से चिपका लिया गया है। भीतर उनके कुछ भी नहीं है। मैं बात कर रहा हूं उस धर्म की जो भीतर से फूलों की तरह आये और सारे व्यक्तित्व में खिल जाय। लेकिन उन फूलों को लाने में श्रम करना पड़ता है। श्रम इस अर्थ में कि बहुत सी नासमझी छोड़नी पड़ती है, बहुत सा अज्ञान तोड़ना पड़ता है, बहुत से व्यक्तित्व की परतों की खोज करनी पड़ती है, भीतर जाना पड़ता है, उघाड़ना पड़ता है, अपने को नग्न करना पड़ता है, इसके लिए मेहनत उठानी पड़ती है। कागज के फूलों को कोई दिक्कत नहीं है। वे बाजार में मिल जायेंगे, उनको ले आओ और लगा दो। मंदिरों में व्रत लिये जाते हैं, कसमें खायी जाती हैं। वहां तुम चले जाओ, कसमें खाओ, व्रत लो लेकिन उनसे एक झूठा आदमी पैदा होता है, सच्चा आदमी पैदा नहीं होगा। इस पृथ्वी पर इतना असत्य, इतना झूठ, इतना पाखण्ड, इतनी हिपोक्रेसी है, इसका कुल कारण इतना है कि लोगों ने ऊपर से धर्म थोपा है, वह भीतर से नहीं आया है। समझ अगर भीतर से न आये तो बड़ी तकलीफ होती है और बड़ी पीड़ा होती है।

एक सुधारक मेरे पास मेहमान हुए। दो-चार दिन मेरे करीब रहे तो मुझसे परिचित हो गये और मेरे प्रति वे सरल और साफ हो गये। मुझसे कहने लगे कि आपसे मैं अपने हृदय की कुछ सच्ची बातें कह सकता हूं जो मैंने कभी किसी से नहीं कहीं और मेरी कुछ सहायता करें तो मेरा बड़ा लाभ हो। मैंने कहा, मैं क्या कर सकता हूं, बोलो। तो उन्होंने कहा कि सबसे पहला तो यह कि मुझे सिनेमा देखना है। मैं भी बहुत हैरान हुआ। मैंने कहा, मतलब ? तो उन्होंने कहा, जब मैं नौ साल का था तब मेरे पिता ने मुझे दीक्षा दिलवायी थी। मेरे पिता भी दीक्षित हो गये और वह इसलिए दीक्षित हो गये कि मेरी मां मर गयी। मेरी मां के मरने की वजह से पिता बेकार हो गये और वह दीक्षित हो गये।

मैं अकेला नौ साल का बच्चा था, तो उन्होंने दीक्षा दिलवा दी। मेरी बुद्धि नौ साल ऊपर अटकी हुई है, उससे आगे विकसित नहीं हुई है। कैसे विकसित होगी ? दीक्षित आदमी की बुद्धि कभी विकसित नहीं होगी, क्योंकि विकास के लिए चाहिए अनुभव, विकास के लिए चाहिए विराट अनुभव। दीक्षित आदमी को अनुभव नहीं होता है, बंधा हुआ अनुभव होता है, एक घेरे में जीता है। अब नौ साल का बच्चा, उसने कभी फिल्म नहीं देखी थी, हो गया ज्ञानी, वह हो गया है मुनि, वह अपने हाथों में कमण्डल और पट्टी-वट्टी बांधकर घूमने लगा। वह लोगों को आत्मा और मोक्ष का ज्ञान देने लगा। अब भीतर एक अटकाव यह है कि जब वह टाकीज के सामने से निकलता है, वहां भीड़ लगी हुई देखता है, उसके मन में होता है कि भीतर न जाने क्या होता होगा। भीतर कुछ तो होता होगा। इतने लोग भीड़ लगाये हुए हैं खिड़कियों पर। भीतर होता क्या है ? आपको अन्दाज नहीं हो सकता है उस बेचारे की तकलीफ का, क्योंकि आप भीतर हो आये हैं। आपको पता नहीं हो सकता कि नौ साल में जो दीक्षित हो गया है उसकी तकलीफ क्या हो सकती है। वह कितनी मुश्किल में पड़ा होगा। उसने मुझसे कहा, मेरी बड़ी मुसीबत हो गयी है। मैं रहता तो मंदिरों में हूं लेकिन मेरा चित्त टाकीजों के पास घूमता है। तो मैं तो मोक्ष की बातें ही कर सकता हूं, यही करता हूं और देखना मुझे फिल्म है। एक दफे कोई तरकीब से आप मुझे दिखा दें। मैंने एक मित्र को बुलाया। पड़ौस के एक मित्र थे। मैंने उनको कहा कि आप जाकर इनको फिल्म दिखा लाइए। उन्होंने कहा, मैं हाथ जोड़ता हूं, मैं इनको ले जाऊंगा और किसी ने मुझे देख लिया कि मैं इस साधु को फिल्म दिखाने लाया हूं, तो मेरी मरम्मत हो सकती है। मैं नहीं इस झंझट में पड़ता हूँ। बहुत उनको समझाया तो वह बोले कि कैंटूनमेंट एरिया में अंग्रेजी फिल्म की एक टाकीज है। वहां ले जा सकता हूं, क्योंकि वहां जैनी वगैरह नहीं हैं। ये जैनियों के गुरु हैं। वहां अंग्रेजी फिल्म दिखा सकता हूं इनको। बस्ती में नहीं ले जा सकता हूं इनको। लेकिन वह गुरु अंग्रेजी नहीं जानते हैं। वह कहने लगे, अंग्रेजी तो मैं जानता नहीं। तो मैंने कहा, यह तो अंग्रेजी फिल्में ही दिखा सकते हैं, हिन्दी चित्र दिखाने को राजी नहीं हैं। आप अंग्रेजी नहीं समझते हैं। क्या किया जा सकता है ? फिर आप मत जाइए। वह बोले, कोई हर्जा नहीं, भाषा नहीं समझूंगा लेकिन देख तो लूंगा। चले गये। आप सोचिए, नौ वर्ष में व्रत दिलवा दिया जिन्दगी के प्रति आंख बन्द रखने का कि उससे जिन्दगी मिट नहीं जायेगी, उससे जिन्दगी और आकर्षक हो जायगी। मन और जोर जोर से पुकार करने लगता है कि यह जानूं, यह जानूं। ऐसा व्रत किस काम का !

व्रत भूल के मत लेना। व्रत से समझ विकसित नहीं होती है, कुंठित होती है। दीक्षा कभी भूलकर मत लेना, दीक्षा से आदमी मंद-बुद्धि होता है। समझ को स्वीकार कर लेना चाहिए। समझ से एक दिन नियम आते हैं फूलों की तरह। समझ से अंततः संन्यासी भी आता है फूलों की तरह। तब वह संन्यास बिल्कुल दूसरा हो जाता है। यह वर्दीधारियों का संन्यास नहीं होता है। वर्दीधारी संन्यासी में और वर्दीधारी मिल्ट्री के सैनिक में कोई फर्क नहीं है। सब सीखा हुआ है ऊपर से। ये लेफ्ट-राइट करने वाले लोग हैं। इससे ज्यादा कोई मूल्य नहीं है। लिया हुआ संन्यास झूठा होगा। संन्यास आना चाहिए। जीवन की समझ से धीरे धीरे संन्यास आता है। सारा व्यक्तित्व बदल जाता है। उस बदले हुए व्यक्तित्व की सारी बातें जो हमने कही हैं उसके लिए एक सहज फ्लावरिंग, एक सहज खिल जाना व्यक्तित्व का होना चाहिए। थोपा हुआ, जबरदस्ती खींचा-ताना, चेष्टा से लाया हुआ, भय और प्रलोभन के मार्ग से निभाया हुआ इस तरह का कोई भी ढांचा मनुष्य के हित में नहीं है। वह मनुष्य की हत्या करता है!

★

परमात्मा को जानना हो तो समर्पण चाहिए, हार चाहिए, मिट जाना चाहिए। और जो सब भांति मिट जाते हैं, वे उसे पाने के अधिकारी हो जाते हैं

संकलन : पुष्करभाई गोकाणी

'बीकळी' से साभार

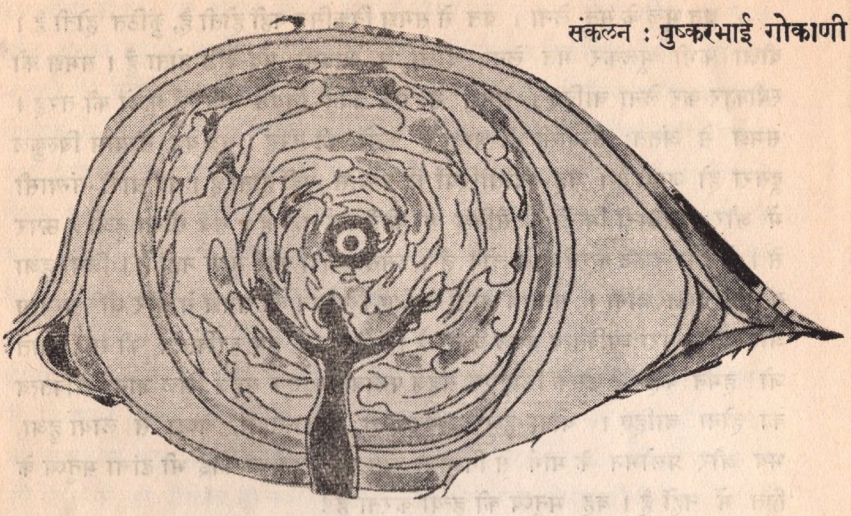

मृत्यु पर विजय (२)

'ज्योति शिखा'के पिछले अंक में 'मृत्यु पर विजय' शीर्षक से प्रकाशित प्रवचन में आचार्यश्री ने बताया था कि 'जब कोई मृत्यु को गले लगा लेता है, तो मृत्यु हार जाती है...' उसी संदर्भ में इस लेख में 'मृत्यु अज्ञान का अनुभव है, अमरत्व ज्ञान का अनुभव है' को प्रतिपादित किया गया है

एक मित्र ने पूछा है कि मृत्यु के संबंध में हम सोचे ही क्यों, जीवन मिला है उसे जियें। वर्तमान में जो है उसमें रहें। मृत्यु के विचार को ही हम क्यों बीच में कर लेते हैं ?

उन्होंने ठीक बात पूछी है। लेकिन अगर इतना भी सोचा कि मृत्यु के विचार को क्यों बीच में आने दें, तो भी मृत्यु का विचार आ ही गया। और अगर इतना ही सोचें कि हम जियें ही, हम मरने के संबंध में सोचें ही नहीं, तो भी सोचना शुरू हो गया। मृत्यु इतना बड़ा तथ्य है कि उससे आंखें नहीं चुराई जा सकतीं। यद्यपि हम जीवन भर यही कोशिश करते हैं कि मृत्यु के संबंध में न सोचें, इसलिए नहीं कि मृत्यु न सोचने जैसी चीज है, बल्कि इसलिए कि सोचने से भी भय

लगता है। ये विचार भी प्राणों को कंपा डालते हैं कि मैं मरूंगा। जब मरूंगा तब तो कंपायेगा ही। यह विचार भी, बिना मरे, मन को पकड़े कि 'मैं मरूंगा', तो सारे प्राण जड़ों से कट जाते हैं। (आदमी निरंतर कोशिश करता रहा है कि मृत्यु को भुलायें, सोचें नहीं। हमने सारी व्यवस्था ऐसी की है जीवन की, कि मृत्यु न दिखायी पड़े। उसको झुठलाने की पूरी कोशिश की है। और आदमी ने जो इंतजाम किये हैं वह सफल होते हुए दिखायी पड़ते हैं लेकिन सफल नहीं हैं, क्योंकि मृत्यु है। उससे कैसे भागेंगे, कहां भागेंगे? और भागते भागते उसमें ही पहुंच जाना है। कहीं भी भागें, किसी भी दिशा में भागें, वहीं पहुंच जायेंगे क्योंकि वह रोज करीब आती चली जाती है। सोचें न सोचें, भागें न भागें, लेकिन किसी भी तथ्य से भागा नहीं जा सकता। मृत्यु कोई ऐसी बात नहीं है कि भविष्य में घटेगी इसलिए हम उसको क्यों सोचें। यह भ्रांति है कि मृत्यु भविष्य में घटित होगी। मृत्यु तो प्रतिपल घटित हो रही है, हां, पूर्ण होगी भविष्य में। घटित तो प्रतिपल हो रही है, यानी इस वक्त भी हम मर रहे हैं। यहां घंटे भर हम बैठे हुए हैं तो घंटे भर मर जायेंगे। यदि सत्तर साल लगेंगे पूरे मरने में तो उसमें यह एक घंटा भी सम्मिलित है। यह घंटा भर भी हम मरेंगे। ऐसा नहीं है कि अचानक कोई एक दिन सतर साल में मर जाता है। अचानक मौत नहीं आती है, मौत कोई आकस्मिक घटना नहीं है, यह ग्रोथ है, विकास है जो जन्म के दिन से ही शुरू हो जाती है। असल में जन्म मृत्यु का पहला छोर है और मृत्यु अंतिम छोर है। यह यात्रा उसी दिन शुरू हो जाती है जिसको हम जन्म-दिन कहते हैं। वह मरने के क्षण का पहला दिन है। कैसे कोई आदमी द्वारका से चल पड़े कलकत्ता के लिए, तो जो पहला कदम उठायेगा वह भी कलकत्ता के लिए उठायेगा और अंतिम कदम जितना कलकत्ता में पहुंचायेगा उतना ही पहला कदम भी पहुंचा रहा है। और अगर पहला नहीं पहुंचायेगा तो अंतिम कदम पहुंचा नहीं सकता है। यानी जब द्वारका से कलकता चलने का पहला कदम उठाया तभी मैं कलकत्ता पहुंचने लगा। कलकत्ता एक कदम पास आ गया और एक-एक कदम पास आता चला जाता है। हालांकि हो सकता है कि छः महीने बाद आप कहें कि अब कलकत्ता आया, लेकिन वह छः महीने पहले ही आना शुरू हो गया था, इसलिए छः महीने बाद आ चुका है।

दूसरी बात यह कहना चाहता हूं कि मृत्यु भविष्य है, ऐसा मत सोचना आप। मृत्यु पल है और भविष्य—हमारे सारे वर्तमान का जोड़ है। हम जोड़ते चले जा रहे हैं, जोड़ते चले जा रहे हैं। पानी को कोई गर्म कर रहा है, पहली डिग्री

पर गर्म हो गया है, अभी भाप नहीं बन गया है। दो डिग्री पर पानी गर्म हो गया है, अभी भाप नहीं बन गया है, भाप तो सौ डिग्री पर बनेगा। लेकिन पहली डिग्री पर भी भाप बनने के करीब पहुंचने लगा। दूसरी डिग्री पर, तीसरी डिग्री पर, निन्यानवे डिग्री पर भी पानी भाप नहीं बन गया है, सौ डिग्री पर ही भाप बनेगा। क्या आपने कभी ख्याल किया है कि सौवीं डिग्री एक ही डिग्री है और पहली डिग्री भी एक ही डिग्री है। निन्यानवे से सौ तक जो यात्रा करनी पड़ी है वही यात्रा एक से दो तक करनी पड़ी है। उसमें कोई फर्क नहीं है। इसलिए जो जानता है वह पहली डिग्री पर ही कहेगा, सावधान, पानी भाप बन जायगा, हालांकि कहीं पानी भाप बनता हुआ दिखायी नहीं पड़ता है। फिर हम कहेंगे, पानी गरम हो रहा है, भाप कहां बनता है? निन्यानवे डिग्री तक हम अपने को धोखा देते हैं कि पानी अभी भाप नहीं बनता है, लेकिन सौवीं डिग्री पर पानी भाप बनेगा और हर डिग्री सौवीं डिग्री के करीब आती जायेगी। इसलिए मृत्यु भविष्य में है कहकर बचने की कोशिश करनी व्यर्थ है। मृत्यु प्रतिपल है। हम रोज ही मर रहे हैं।

असल में जिसको हम जीना कह रहे हैं वह धीरे धीरे मरने का नाम है। मैं नहीं कहता कि भविष्य के लिए सोचें, लेकिन जो हो ही रहा है उसे देखें। उन महाशय ने पूछा है कि मृत्यु के संबंध में क्यों सोचें? मैं भी नहीं कहता कि सोचें। सोचकर आप जान भी नहीं पायेंगे। यह ध्यान रहे, सोचने से किसी भी तथ्य को कभी भी नहीं जाना जा सकता है। असल में सोचने की तरकीब तथ्यों को झुठलाने की तरकीब है। अगर एक फूल खिला है और आप फूल के संबंध में सोचें तो आप फूल को ही नहीं जान पायेंगे। क्योंकि जितना आप सोचने में चले जायेंगे उतना ही फूल दूर छूट जायगा। आप सोचने में आगे निकल जायेंगे, फूल वहीं पड़ा रह जायगा। फूल को सोचने से क्या मतलब है। फूल एक तथ्य है। अगर फूल को जानना है तो सोचें मत, फूल को देखें। देखने और सोचने में फर्क है और यह फर्क महत्वपूर्ण है। पश्चिम सोचने पर बड़ा जोर देता है, इसलिए उन्होंने अपने विचार-शास्त्र को फिलासफी का नाम दिया है। फिलासफी का मतलब है विचार। हमने अपने सोचने के शास्त्र को दर्शन का नाम दिया है--देखना। दर्शन का अर्थ सोचना नहीं है। जरा समझने जैसी बात है कि हमने दर्शन कहा है, उन्होंने फिलासफी कहा है। इसमें बुनियादी फर्क है। जो लोग फिलासफी और दर्शन को पर्यायवाची कहते हैं उन्हें कुछ भी पता नहीं है। ये दोनों पर्यायवाची नहीं हैं। इसलिए इण्डियन फिलासफी जैसी कोई चीज ही नहीं है और पाश्चात्य दर्शन जैसी कोई चीज नहीं है। पश्चिम जो है वह विचार-शास्त्र है, मीमांसा है, तर्क है,

विश्लेषण है। पूरब ने एक और ही फिक्र की है। पूरब ने यह अनुभव किया है कि कुछ तथ्यों को सोचने से जाना ही नहीं जा सकता। तथ्यों को देखना पड़ेगा, जीना पड़ेगा। जीने और सोचने में भी बड़ा फर्क है। एक आदमी प्रेम के संबंध में सोचता है तो हो सकता है प्रेम के ऊपर शास्त्र लिख सके। लेकिन प्रेमी प्रेम में जीता है, देखता है, हो सकता है वह शास्त्र न लिख सके। और प्रेमी से अगर कोई पूछने जाय कि प्रेम के संबंध में कुछ कहो, तो शायद आंखें उसकी बन्द हो जायं, आंसू बहने लगें और वह कहे--मत कहो, मत पूछो, प्रेम के संबंध में मैं क्या कह सकता हूं ? और जिसने प्रेम पर सोचा है वह प्रेम पर घण्टों समझायेगा; लेकिन प्रेम के कण भर का उसे पता नहीं होगा।

सोचना और देखना विभिन्न प्रक्रियाएं हैं। तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मृत्यु के संबंध में सोचें। सोचेंगे तो आप मृत्यु को कभी न जान सकेंगे। देखना पड़ेगा। यानी मैं यह कह रहा हूं कि मृत्यु तो यह है खड़ी, आपके भीतर खड़ी है, इसे देखना पड़ेगा। यह जिसे मैं, मैं कह रहा हूं यह मर रहा है पूरे वक्त। इस मरने की घटना को देखना पड़ेगा, इस मरने की घटना को जानना पड़ेगा, इस मरने की घटना को स्वीकार करना पड़ेगा कि मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं। झुठलाने की हम बहुत कोशिश करते हैं, हजार तरकीबें निकाली हैं हमने झुठलाने की। सफेद हो गये बाल को खिजाब लगा सकते हैं, लेकिन उससे बात झुठलायी नहीं जाती। खिजाब लगे हुए बाल के भीतर भी बाल सफेद हैं। मौत आनी शुरू हो गयी है। उसे हम कैसे झुठलायेंगे ? उसे हम जितना ही झुठलाते चले जायं कोई फर्क नहीं पड़ता। उसकी गति चल रही है, चल रही है। इतना ही फर्क पड़ता है कि हम उसे जानने से वंचित रह जायं। मैं यह कह रहा हूं कि जो अभी मृत्यु को ही न जान पाया वह जीवन को कैसे जानेगा ? मैं यह कह रहा हूं कि मृत्यु तो परिधि पर है, जीवन केन्द्र पर है। अगर परिधि को ही जाना, तो केन्द्र को हम कैसे जानेंगे ? और अगर परिधि से ही भाग खड़े हुए, तो केन्द्र के पास कभी पहुंच ही नहीं पायेंगे। क्योंकि जिस घर की बाहर की बाउण्ड्री की दीवालों से मैं डर गया और भाग खड़ा हुआ उस घर के भीतर के भवन में कैसे प्रवेश करूंगा ? मृत्यु है बाहर का घेरा और जीवन है मृत्यु के केन्द्र में स्थापित मंदिर। उस बाहर के घेरे से हम भाग रहे हैं, तो हम जीवन से भी भाग सकते हैं। जो मृत्यु को जानेगा वह धीरे-धीरे मृत्यु के आवरण से हट के जीवन को भी जानने लगेगा।

मृत्यु द्वार है जीवन को जानने का। मृत्यु से बचे कि जीवन से भी बचे। जब मैं कहता हूं कि मृत्यु को जानें, तथ्यों को पहचानें तो सोचने के लिए नहीं कह

रहा हूं। एक मजे की बात समझ लेनी चाहिए। सोचने का मतलब है, जिसे हम जानते हैं उसको दोहराना है। सोचना कभी भी मौलिक नहीं होता है। आमतौर से हम कहते हैं कि फलां व्यक्ति के विचार बहुत मौलिक हैं। कोई विचार कभी मौलिक नहीं होता। विचार मौलिक हो ही नहीं सकता। दर्शन मौलिक हो सकता है, विचार तो सदा बासी होते हैं। अगर आपसे मैं कहूं कि गुलाब के इस फूल के संबंध में सोचिये। आप क्या सोचेंगे? जो आपने गुलाब के संबंध में जाना हुआ है उसी को दोहरायेंगे। और करेंगे क्या? सोचने के कारण क्या हो सकते हैं? क्या गुलाब के फूल के संबंध में एकाध भी अज्ञात मौलिक दृष्टि आपके सोचने में आ सकती है? कैसे आयेगी? सोचना तो विचार का दोहराना है। कहेंगे बड़ा सुंदर है। यह कितनी बार नहीं सुना है, यह कितनी बार नहीं पढ़ा है? कहेंगे बिल्कुल प्रेयसी के मुख की भांति है। लेकिन कितनी बार नहीं सुना है, कितनी बार नहीं पढ़ा है? विचार में आप कहां गुलाब के फूल में प्रवेश कर पायेंगे? विचार से आप गुलाब के फूल के संबंध में, जो स्मृति में बैठा है, उसमें ही प्रवेश करते रहेंगे, अपने बासीपन को आप उघाड़ के देखते रहेंगे। इसलिए विचार कभी भी मौलिक नहीं होता। मौलिक विचारक जगत में होता ही नहीं। द्रष्टा मौलिक होते हैं। तो अगर कोई व्यक्ति गुलाब के फूल को देखे तो पहली शर्त तो यह है कि विचार न करे। विचार को स्मृति से हटा दे, खाली हो जाय और गुलाब के फूल के साथ जिये। इधर हो गुलाब का फूल, उधर हो वह, बीच में कोई न हो। सुना हुआ, पढ़ा हुआ जाना हुआ कुछ भी बीच में न हो, अनुभव किया हुआ कोई भी बीच में न हो। इधर रहूं मैं, उधर हो गुलाब। तब जो 'अननोन' है, वह जो अज्ञात गुलाब के भीतर बैठा है, वह उसके प्राणों में प्रवेश करने लगेगा। और तब ऐसा पता चलेगा कि मैं और गुलाब अलग कहां! तब हम भीतर के गुलाब को जान पायेंगे। द्रष्टा भीतर प्रवेश कर आता है, विचारक बाहर घूमता रहता है। इसलिए विचारक की कोई उपलब्धि नहीं है। जो उपलब्धि है वह द्रष्टा की है। द्रष्टा भीतर प्रवेश कर जाता है क्योंकि उसके और उसके सामने जो है, उसके बीच कोई दीवाल नहीं रह जाती। दीवाल टूट जाती है, मिट जाती है।

कबीर ने एक दिन अपने बेटे कमाल को कहा कि वह जाये और गाय-भैंस के लिए जंगल से थोड़ा घास काट लाये। कमाल घास काटने जंगल में गया। सुबह का निकला दोपहर होने लगी और वह नहीं लौटा। कबीर चिन्तित हुए

हैं। फिर दोपहर भी ढलने लगी और वह नहीं लौटा। फिर बड़ी चिंता बढ़ गयी। फिर सांझ होने लगी। दिन ढलने के करीब आ गया, तो कबीर और उनके कुछ भक्त ढूंढ़ने निकले कि कमाल गया कहां। जाकर देखते हैं कि जंगल में घनी घास के बीच कमाल खड़ा है। आंखें बंद हैं और डोल रहा है हवा के झोंके में। जैसे घास डोल रही है वैसे ही कमाल भी डोल रहा है। जाकर उसको हिलाया और पूछा, यह क्या कर रहे हो? उसने आंख खोली और कहा, अरे बड़ी भूल हो गयी! कबीर ने कहा, कितनी देर लगा दी, कर क्या रहे हो? उसने कहा, जब मैं यहां आया तो बड़ी भूल हो गयी। कबीर ने पूछा, क्या भूल हो गयी? उसने कहा, मैं घास काटना छोड़कर घास को देखने लगा और देखते देखते कब मैं घास हो गया मुझे पता ही नहीं। फिर सांझ हो गयी और मुझे पता ही नहीं था कि मैं हूं कमाल, जो घास काटने आया था। मैं तो घास ही हो गया। इतना आनंद था उस घास हो जाने में कि कमाल होने में कभी भी न पाया। और तुम आ गये तो ठीक लिया, अन्यथा अब लौटना न हो पाता। क्योंकि मुझे यही लग रहा था कि हवाएं घास को नहीं हिला रही हैं, वह मुझे हिला रही हैं। काटने वाला और कटने वाला समाप्त हो गया!

कभी आपने अपनी पत्नी को देखा है, अपने बेटे को देखा है, जिनके साथ आप बरसों से जी रहे हैं? कभी उन्हें देखा है, सोचा है कि कल पत्नी ने क्या क्या किया था! वह बीच में खड़ा रहा। सुबह दफ्तर जाते वक्त उसने कैसा झगड़ा किया था! वह बीच में खड़ा हुआ है। खाना खाते वक्त उसने क्या कहा था! वह बीच में खड़ा हुआ है। सोचा है सदा, देखा कभी भी नहीं और इसलिए कोई भी संबंध नहीं है पति और पत्नी के बीच, बाप और बेटे के बीच, मां और बेटे के बीच।

संबंध तो वहां होता है जहां विचार विलीन होता है और दर्शन शुरू होता है, क्योंकि तब बीच में तोड़ने वाला कोई भी नहीं रह जाता। ध्यान रहे, संबंध का मतलब ऐसा नहीं कि दो को जोड़ने वाला कोई हो। जबतक जोड़ने वाला बीच में कोई होगा तबतक तोड़ने वाला मौजूद है, क्योंकि जो जोड़ता है वह तोड़ता है। जिस दिन जोड़ने वाला भी बीच में कोई मौजूद नहीं रह जाता, दो ही रह जाते हैं, बीच में कोई नहीं रह जाता, उस दिन एक ही रह जाता है, दो नहीं रह जाते। संबंध का मतलब ऐसा नहीं है कि जिससे हम जुड़े हैं। संबंध का मतलब यह है कि जिसके और हमारे बीच कुछ भी

नहीं है, कोई है नहीं बीच में, जोड़ने तक को नहीं है। जहां धाराएं विलीन हो जाती हैं और एक दूसरे में लीन हो जाती हैं। इसका नाम प्रेम है। दर्शन प्रेम में ले जाता है, और प्रेम का सूत्र है दर्शन। और जिसने प्रेम नहीं किया उसने कभी कुछ न जाना। चाहे किसी भी चीज को जानने गये हों तो प्रेम से ही जानना है। तभी मैं कहता हूं कि मृत्यु को भी जानना है, क्योंकि मृत्यु से भी प्रेम करना पड़ेगा, मृत्यु का भी दर्शन करना पड़ेगा। किंतु वह जो भय-भीत है, भागा हुआ है वह प्रेम कैसे करे, वह दर्शन कैसे करे, वह मृत्यु को देखे कैसे? मृत्यु सामने खड़ी हो तो वह पीठ मोड़कर खड़ा हो जाता है। वह आंख बन्द कर लेता है। वह मृत्यु को कभी सामने नहीं आने देता है, वह भयभीत है, डरा हुआ है इसलिए वह मृत्यु को कभी नहीं देख पाता है, न प्रेम कर पाता है। जो मृत्यु को ही न प्रेम कर पाया, वह जीवन को कैसे प्रेम करेगा? क्योंकि मृत्यु तो बड़ी ऊपर की घटना है, जीवन बड़ी गहरे की घटना है। जो कुएं पर पहली सीढ़ी से लौट आया वह कुएं के जल तक कैसे पहुंचेगा? इसलिए मृत्यु को तो जीना पड़ेगा, जानना पड़ेगा, देखना पड़ेगा, प्रेम करना पड़ेगा, उसके साथ आंखें मिलानी पड़ेंगी और जैसे ही कोई आंख मृत्यु से मिलाता है, जैसे ही कोई खड़े होकर उसे देखने लगता है, जैसे ही कोई उसमें प्रवेश कर जाता है वह हैरान होता है कि कितना बड़ा रहस्य छिपा है मृत्यु में। जिसे हम मृत्यु जानकर भागते थे उसके भीतर परम जीवन का स्रोत छिपा हुआ है। इसलिए मैं कहता हूं कि मरें स्वेच्छा से ताकि जीवन को पहुंच सकें।

जीसस का एक अद्भत वचन है। जीसस ने कहा है कि जो अपने को बचायेगा, मिट जायगा। और जो अपने को मिटायेगा, उसको मिटाने वाला कोई भी नहीं है। जो अपने को खोजेगा वह पा लेगा और जो अपने को बचायेगा वह खो जायेगा। बीज अगर अपने को बचाने में लग जायेगा, तो सड़ेगा और क्या होगा! और एक बीज अगर अपने को मिटा दे जमीन में और खो जाय तो वृक्ष बन जायगा। बीज की मृत्यु वृक्ष का जीवन बन जाता है। और बीज अगर अपने को बचाने लगे कि मैं डरता हूं मैं मर सकता हू, मैं अपने को खो नहीं सकता, मैं अपने को क्यों खोऊं; तो फिर बीज सड़ेगा, फिर बीज भी न रह जायगा, वृक्ष होना तो बहुत दूर है। हम मौत से डर के सिकुड़ जाते हैं। मैं एक बात और कहना चाहता हूं जो आपके ख्याल में कभी न आयी होगी। सिर्फ मृत्यु से डरे हुए आदमी में अहंकार होता है क्योंकि अहंकार सिकुड़ा हुआ व्यक्तित्व, ठोस गांठ

है। जो मौत से डरा वह सिकुड़ जाता है। क्योंकि जो डरता है उसे सिकुड़ना पड़ता है, जो सिकुड़ता है वह गांठ बन जाता है। 'मैं' का जो भाव है वह मौत से डरे हुए आदमी का भाव है और जो आदमी मौत में उतर जाता है, जो उससे डरता नहीं है, उसको जीने लगता है उसका 'मैं' विलीन हो जाता है, उसका अहंकार विलीन हो जाता है। और जब अहंकार विलीन हो जाता है तो जीवन ही रह जाता है। इसलिए हम ऐसा भी कह सकते हैं कि सिर्फ अहंकार मरता है, आत्मा नहीं मरती और हम चूंकि अहंकारी बने रहते हैं इसलिए बड़ी मुश्किल हो जाती है। अहंकार ही मर सकता है, उसकी ही मृत्यु है, क्योंकि वह झूठ है। उसे मरना जरूर पड़ेगा और हम उसी को पकड़े हुए हैं। जैसे समझ लें, सागर में एक लहर उठ रही है अभी, सागर लहरें ले रहा है, उसमें एक लहर उठी। अगर लहर लहर की तरह बचना चाहे तो नहीं बच सकती, मरेगी ही। लहर लहर की तरह कैसे बच सकती है, मरेगी ही। हां, एक ही रास्ता है कि बर्फ बन जाय, सिकुड़ जाय, ठोस हो जाय, तो बच सकती है। ध्यान रहे, लहर टूटी नहीं है, सागर से एक है। लेकिन बर्फ टूट जाती है, सागर से अलग हो जाती है क्योंकि बर्फ सख्त हो गयी, सिकुड़ गयी, जम गयी! तो लहर जो सागर के साथ एक थी लेकिन बर्फ का टुकड़ा अगर हो जाय तो बच तो जायगी, लेकिन सागर से टूट जायेगी। फिर कितनी देर बची रहेगी? जो जम जाता है, वह पिघलेगा। गरीब लहर जरा जल्दी पिघल जायेगी, अमीर लहर जरा देर से पिघलेगी। फिर क्या फर्क होगा? जो जरा बड़ी लहर होगी देर लगेगी सूरज की रोशनी को उसे पिघलाने में। छोटी लहर होगी जल्दी पिघल जायेगी। समय का ही फर्क हो सकता है — पिघलेगी, और रोयेगी, चिल्लायेगी; क्योंकि जैसे ही पिघलेगी वैसे ही मिटेगी। लेकिन लहर अगर लहर की तरह अपने को खो ही दे और नीचे उतर कर जान ले कि सागर ऊपर है तो फिर लहर को मिटाने का सवाल ही मिट जाता है। फिर वह मिटे तो है, न मिटे तो है; क्योंकि वह जानती ही नहीं है कि मैं लहर हूं। तब वह जानती है कि मैं सागर हूं। तब जब लहर खो जाती है तब भी वह है, तब वह विश्राम में है। और जब लहर उठती है, तब भी वह है, श्रम में है। और श्रम से विश्राम कम सुखद नहीं है ज्यादा ही सुखद है। एक श्रम का होना है, एक विश्राम का होना है। जिसे हम संसार कहते हैं वह श्रम का होना है और जिसे हम मोक्ष कहते हैं वह विश्राम पूर्ण है। ऐसे ही जैसे एक लहर है हवाओं से लड़ती, टकराती, परेशान। और फिर एक लहर

है अब भी सागर में, लेकिन विश्राम में है। लेकिन अगर कोई लहर लहर की तरह अपने को मान ले तो अहंकार से भर गयी और तब वह सागर से अपने को तोड़ना चाहेगी। क्योंकि जिसको यह ख्याल हो जाय कि मैं हूं, वह सबके साथ मिला हुआ कैसे रहे। मिला हुआ रहे तो फिर 'मैं' का पता नहीं चलता। इसलिए मैं कहता हूं तोड़ लो सबसे अपने को। लेकिन तोड़कर बड़ा दुख होता है। फिर मैं कहता हूं कि जोड़ो सबसे अपने को। कितना चक्कर है 'मैं' का? पहले कहता हूं तोड़ो सबसे अपने को, क्योंकि तुम अलग हो। तुम सबको कैसे जोड़े रह सकते हो? तो 'मैं' अपने को तोड़ लेता है, फिर तोड़ करके वह परेशानी में पड़ जाता है। क्योंकि टूटते ही दुख शुरू हो जाता है, क्योंकि टूटते ही मौत शुरू हो जाती है।

लहर ने जैसे ही अपने को जाना कि सागर से अलग है, उसका मरना शुरू हुआ, मौत आयी। अब मौत को बचाना पड़ेगा, अब वह संघर्ष में पड़ जायेगी। जबतक वह सागर से एक थी, मौत थी ही नहीं, क्योंकि सागर नहीं मरता है। ध्यान रहे, सागर बिना लहर के भी हो सकता है, लहर बिना सागर के नहीं हो सकती है। आप लहर नहीं ला सकते बिना सागर के। सागर आ ही जायगा बिना लहर के। सागर बिना लहर के हो सकता है तब जब लहरें शांति में हैं, विश्राम में हैं। लहर ने जैसे ही चाहा कि मैं बचाऊं अपने को अलग, वैसे ही कठिनाई शुरू हो गयी और वह सागर से टूट गयी और मौत शुरू हो गयी। इसलिए मरने वाला प्रेम करना चाहता है। हम सब मरने वाले प्रेम के लिए इसीलिए इतने आतुर हैं कि प्रेम फिर जोड़ने का उपाय बनता है। इसलिए हममें से कोई भी बिना प्रेम के जीने में बड़े दुख में है। प्रेम चाहिए, कोई प्रेम ले, कोई प्रेम दे। जिस व्यक्ति को प्रेम न मिले उसकी बड़ी मुश्किल हो जाती है। क्या हमने कभी सोचा कि प्रेम का मतलब क्या है? यानी प्रेम का मतलब यह है कि वह जो हमने विराट से तोड़ दिया है नाता, अब हम फिर उसको टुकड़े-टुकड़े जोड़ने की कोशिश कर रहे हैं—जिसका नाम प्रेम है। और एक प्रेम वह है जहां हम यह तोड़ने की कोशिश करना बन्द कर देते हैं—उसका नाम प्रार्थना है। इसलिए प्रार्थना जो है पूर्ण प्रेम का नाम है। उसका मतलब बहुत भिन्न है। उसका मतलब यह नहीं है कि हमें एक-एक टुकड़े को जोड़ने की कोशिश करना है। उसका मतलब है, हमने तोड़ना बन्द कर दिया है। लहर ने कहा, मैं सागर हूं, अब वह हर लहर से अपने को जोड़ने की कोशिश नहीं करती। और ध्यान रहे, लहर खुद ही

मरी जा रही है। अगर लहर ने लहर से संबंध जोड़ने की कोशिश की तो मुश्किल में पड़ जाने वाली है। इसलिए जिसको हम प्रेम कहते हैं वह अत्यंत दुखदायी है, क्योंकि लहर लहर से संबंधित होने की कोशिश कर रही है। यह लहर भी मर रही है, वह लहर भी मर रही है। दोनों लहरें मर रही हैं और दोनों लहरें इस आशा में एक दूसरे से जुड़ रही हैं कि शायद जुड़ने से हम बच जायं।

इसलिए प्रेम को हम सुरक्षा बना रहे हैं। इसलिए कोई अकेला रहने में डरता है। पत्नी चाहिए, पति चाहिए, बेटा चाहिए, मां चाहिए, भाई चाहिए, मित्र चाहिए, समाज चाहिए, संगठन चाहिए, राष्ट्र चाहिए। यह सब अहंकार की चेष्टाएं हैं जिसने तोड़ लिया है, फिर वह जोड़ने की कोशिश में लगा हुआ है। लेकिन यह सब जोड़ने की कोशिश मौत ला रही है, क्योंकि जिससे हम जुड़ रहे हैं वह भी उतना ही मरण से घिरा हुआ है, उतना ही अहंकार से घिरा हुआ है। मजे की बात यह है कि वह हमसे जुड़कर अमर होना चाहता है; लेकिन दोनों मरणधर्मा हैं, कैसे अमर हो सकते हैं? मौत और दुगनी हो सकती है, अमृत बिल्कुल नहीं हो सकती है। इसलिए दो प्रेमी कितनी आशा करते हैं कि प्रेम अमर हो जाय! दिन रात गीत गाते हैं, अनंतकाल से कविताएं लिख रहे हैं कि प्रेम अमर हो जाय। वह अमर होने की आकांक्षा दो मरणधर्मा मिलकर कैसे कर सकते हैं? दो मरणधर्मा मिलेंगे तो मौत दुगनी होती है और कुछ भी नहीं होता है। दोनों पिघलते जा रहे हैं, दोनों गिरते जा रहे हैं, दोनों मिटते जा रहे हैं इसलिए दोनों भयभीत हैं, चिंतित हैं। लहर अपने संगठन बनाये हुए है। वह कहती है हमें बचना है। वह राष्ट्र बनाये हुए है, हिन्दू-मुसलमान सम्प्रदाय बनाये हुए है। लेकिन उसे पता होना चाहिए सब संगठन मिट जाने वाला है; क्योंकि नीचे सागर ही एकमात्र संगठन है और सागर का संगठन बिल्कुल और बात है। उसका मतलब यह नहीं है कि लहर अपने से सागर को जोड़ लेती है, उसका यह मतलब है कि लहर जानती है कि मैं अलग ही नहीं हूं। इसलिए मैं कहता हूं कि धार्मिक व्यक्ति का कोई संगठन नहीं होता, न कोई परिवार होता है, न उसका कोई मित्र होता है, न उसका कोई पिता है, न कोई भाई है।

जीसस ने कुछ बड़े कठोर शब्द कहे हैं। असल में इतने कठोर शब्द वे ही लोग कह सकते हैं जो प्रेम को उपलब्ध हो गये हैं। जिनका प्रेम

कमजोर है वे ऐसे कठोर शब्द नहीं कह सकते। एक दिन बाजार में लोग भीड़ लगाये खड़े हैं और जीसस की मां मरियम उनसे मिलने आयी है। भीड़ में लोग उसे रास्ता दे रहे हैं। कोई चिल्ला रहा है — रास्ता दो, जीसस की मां आ रही है। जीसस की मां को भीतर आने दो। तो जीसस भीतर से चिल्लाते हैं कि अगर जीसस की मां को रास्ता दे रहे हो तो देना ही मत, क्योंकि जीसस की कोई मां नहीं है। मरियम एकदम चौंककर खड़ी हो गयी। और जीसस घिरे हुए लोगों को कहते हैं कि जबतक तुम मां-बाप को न मिटा पाओ, तबतक मेरे पास न आओ। जबतक तुम्हारी मां है, जबतक तुम्हारे पिता हैं, जबतक तुम्हारे भाई हैं तबतक तुम मेरे पास न आओ। बड़ी कठोर बात है। हम सोच भी नहीं सकते कि जीसस जैसा प्रेम से भरा आदमी यह कहेगा कि कोई मेरी मां नहीं है! कौन मेरी मां है? मरियम चौंक कर खड़ी हो गयी। जीसस कहते हैं कि क्या तुम इस स्त्री को मेरी मां कहते हो? कोई मेरी मां नहीं है। ध्यान रहे, तुम्हारी मां हो अभी, तो तुम मेरे पास न आ सकोगे। क्या मामला है? असल में जो लहर लहर से संगठित हो रही हो, तो सागर के पास न जा सकेगी। असल में सागर से बचने के लिए ही लहर लहर आपस में संगठन बनाती हैं। अकेली लहर को ज्यादा डर मालूम पड़ता है कि कहीं अकेली खो न जाऊं, खो न जाऊं। खो ही रही है लहर। लहरें इकट्ठी हो जायं तो थोड़ी हिम्मत बंधती है कि थोड़ी संगठित हो गयीं, थोड़ी भीड़ हो गयी। इसलिए आदमी भीड़ में जीना पसंद करता है, अकेले में घबराता है। क्योंकि अकेले में बिल्कुल अकेली लहर रह जाती है जो दोनों तरफ से फिसल रही है, गिर रही है, मिट रही है, मिटने के करीब पहुंच रही है। इसलिए संगठन बनाती है, इसलिए शृंखला बनाती है। बाप कहता है कि मैं मिट जाऊंगा कोई फिक्र नहीं, बेटे को छोड़ जाऊंगा। लहर कहती है मैं मिट जाऊंगी लेकिन मैं एक छोटी लहर उठाये जाती हूं। वह तो जियेगी, मेरी शृंखला तो रहेगी। मेरा नाम रहेगा। बाप के बेटा न हो, तो बड़ा दुख होता है, क्योंकि वह अमरत्व का कोई इन्तजाम नहीं कर पाया। हाय! वह तो मिट जायगा लेकिन एक दूसरी लहर को पैदा न कर पायेगा जो आगे चलती चली जाय! चाहे वह मिट जाय कोई बात नहीं, लेकिन यह संतोष तो रहे कि एक लहर पीछे छूट गयी थी।

जिन लोगों के जीवन में कोई सृजनात्मक गतिविधि होती है उनकी बात अलग है। जैसे कोई पेंटर, कोई चित्र बनाने वाला, कोई संगीतज्ञ, कोई कवि,

कोई लेखक — उनको बेटा पैदा करने की उतनी फिक्र नहीं होती। उसका कुल कारण इतना है कि वह बेटे की सब्स्टीट्यूट को पा जाते हैं। उनकी पेंटिंग जिन्दा रहेगी, उनकी कविता जिन्दा रहेगी, उनकी मूर्ति जिन्दा रहेगी—उनको बेटे की फिक्र नहीं। इसलिए वैज्ञानिक, चित्रकार, मूर्तिकार, लेखक, कवि उतनी फिक्र नहीं करते बेटे की। उसका और कोई कारण नहीं है, उन्होंने एक दूसरा बेटा पाल लिया है। उन्होंने एक लहर पैदा कर दी, जो जिन्दा रहेगी और आपसे ज्यादा देर तक टिकने वाला बेटा पा लिया है उन्होंने। क्योंकि जब आपके बेटे खो जायेंगे तब भी उनकी किताब रहेगी, इसलिए साहित्यकार बहुत फिक्र नहीं रखता कि उसका बेटा हो जाय, उसकी संतति हो जाय। इसका मतलब यह नहीं है कि वह निश्चिंत है। उसका कारण यही है कि उसे लंबी देर तक टिकने वाली लहर मिल गयी है। वह लहर फिक्र छोड़ देती है छोटी लहरों की। इसलिए परिवार में वह उत्सुक नहीं है। उसने और तरह का परिवार बना लिया है। इसलिए साहित्यकार कहेगा कि धन खो जायेगा, संपत्ति खो जायेगी लेकिन शास्त्र रहेगा। उसकी वही आकांक्षा है। शास्त्र भी खो जाते हैं। कोई शास्त्र नहीं रह जाता है। हां, कुछ ज्यादा देर तक रहता है। कितने शास्त्र खो गये, कितने शास्त्र रोज खोते चले जायेंगे। सब खो जायेगा। असल में लहरों की दुनिया में कितनी ही लंबी कोई लहर चली जाय, खोयेगी ही। लहर होने का मतलब खोना है, लंबाई का कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए लहर है, 'मैं हूं' अगर ऐसा जाना तो मौत से बचने की इच्छा रहेगी, डर रहेगा, घबराहट रहेगी। मैं को देखें — न बचें, न घबरायें, न भागें, बस देखें। और देखने से आपको लगेगा कि जो इस तरफ से मौत थी वह थोड़े भीतर जाने से पता चलता है कि वही जीवन है। तब लहर सागर हो जाती है, तब मिटने का भय मिट जाता है, तब वह सख्त होकर बर्फ नहीं बनना चाहती, तब वह जितनी देर नाचती है सूरज की रोशनी में, खुश है और जब विश्राम करती है, तब विश्राम में खुश है — इसलिए वह जीवन में खुश है, मृत्यु में खुश है। इस प्रकार जो वह जानता है जो है — वह न तो जन्मता है, न मरता है। बस जो है वह है। सिर्फ रूप बदलते रहते हैं।

हम सब भी चेतना के सागर पर उठी हुई लहरें हैं। हममें से कुछ बर्फ हो गये हैं, अधिकतर बर्फ हो गये हैं। अहंकार बर्फ है सख्त पत्थर की तरह। कितना आश्चर्य है, पानी जैसी तरल चीज बर्फ जैसी सख्त पत्थर हो सकती है, कठोर हो सकती है! अगर जमने की आकांक्षा पैदा हो जाय तो

चेतना जैसी सरल चीज, तरल चीज जमकर अहंकार, 'इगो' बन जाती है। हम सब जमने की इच्छा से भरे हुए हैं, इसलिए हम बहुत तरह के उपाय करते हैं कि हम कैसे जम जायं। पानी से बर्फ बनने के नियम हैं। पानी को बर्फ बनना पड़े तो उष्णता खोनी पड़ती है, ठण्डा-ठण्डा हो जाना पड़ता है। जितना ही ठण्डा हो जाता है उतना ही सख्त होता चला जाता है। जिस आदमी को अहंकार बनना हो उसको भी ठण्डा होना पड़ता है, गर्मी खोनी पड़ती है। इसलिए आपने देखा है, जैसा हम कहते है 'हॉट वेल्कम', गरम स्वागत। स्वागत हमेशा ही गरम होता है। 'कोल्ड वेल्कम' का कोई मतलब नहीं होता है।

प्रेम का अर्थ ही गर्मी है, ठण्डे प्रेम का कोई अर्थ नहीं होता। प्रेम ठण्डा होता ही नहीं, उष्णता है उसमें। असल में जीवन उष्णता है, मौत ठण्डी है, जीरो के नीचे। इसलिए सुबह जीवन का प्रतीक है, वह गर्मी का प्रतीक है। सुबह होती है, मौत विदा हो जाती है। सब गर्म, उष्ण हो जाता है, फूल खिल जाते हैं, पक्षी गीत गाने लगते हैं। उष्णता जीवन का प्रतीक है, ठण्डक मौत का। तो जिसको अहंकार बनना हो उसको ठण्डा होना पड़ता है और ठण्डा होने के लिए सब चीजें खोनी पड़ती हैं जो गर्म करती हैं। प्रेम ऊर्जा देता है, घृणा ठण्डक देती है। प्रेम, दया, सहानभूति गर्मी लाती है। कठोरता, निर्दयता ठण्डी लाती है। जैसे पानी के जमने के नियम हैं वैसे मनुष्य के मन के जमने के नियम हैं। नियम वही है कि ठण्डे होते चले जाते हैं। हम कहते हैं न किसी आदमी को कि बिल्कुल ठण्डा है। थोड़ी उसमें से गर्मी गयी फिर पत्थर की तरह हो जाता है वह। ध्यान रहे, जितना गर्म होता है उतना सरल है। तब बहाव होता है जीवन में। तब वह दूसरे में प्रवेश कर जाता है, दूसरे उसमें प्रवेश कर जाते हैं। लेकिन ठण्डा तो सख्त हो जाता है फिर किसी में प्रवेश नहीं हो पाता, सब तरफ से बन्द हो जाता है। न उसमें कोई प्रवेश कर सकता है, न उसका किसी में प्रवेश हो सकता है। अहंकार जमी हुई बर्फ है और प्रेम पिघला हुआ पानी है। मौत से जो डरेगा वह ठण्डा होता चला जायगा, क्योंकि डर है कि मैं मर न जाऊं, मिट न जाऊं।

मैं एक मित्र के घर में कुछ दिन तक रहा था। बड़े धन वाले हैं, बहुत संपदा है उनकी। लेकिन एक बात मैं जानकर हैरान हुआ। वे कभी

किसी से सीधे न बोलेंगे। वैसे आदमी अच्छे हैं। मैं बहुत हैरान हुआ। वे भीतर से बहुत तरल हैं, बाहर से बहुत कठोर हैं। नौकर उनके सामने थर-थरायेगा। उनका बेटा उनके सामने कांपेगा, उनकी पत्नी उनके सामने डरेगी। कोई उनके घर जाने में दस दफे सोचेगा कि जाना है कि नहीं जाना है। द्वार पर भी खड़े होकर डर कर घण्टी बजायेगा कि भीतर प्रवेश करना कि नहीं। जब मैं उनके करीब रहा और निकट से जाना तो मैंने उनसे कहा, यह क्या मामला है? आप आदमी तो बड़े सरल हैं। उन्होंने कहा, मुझे बड़ा डर लगता है। किसी से भी संबंध बनाना खतरनाक है, क्योंकि संबंध बनाओ कि आज नहीं कल वह पैसा मांगना शुरू कर देता है। अगर पत्नी के सामने विनम्र रहो, तो खर्च बढ़ जाते हैं। अगर बेटे के सामने अकड़े न रहो, तो उसका जेब खर्च बढ़ता चला जाता है। अगर नौकर से ठीक से बोलो, तो वह भी मालिक बनने की कोशिश शुरू कर देता है। तो एक ठोस दीवाल चारों तरफ खड़ी करनी पड़ती है जिससे पत्नी भी डरे, बेटा भी बाप के सामने जाने से डरे। कितने ही बाप ऐसा करते हैं। सच तो यह है कि शायद ही किसी घर में ऐसा हो कि बाप और बेटे कभी बैठकर प्रेम से मिलते हों। हां बेटे को जब रुपये चाहिए तब वह बाप के पास जाता है, और बाप को जब कोई उपदेश देना होता है तब वह बेटे के पास जाता है। वह कोई मिलना नहीं होता। क्योंकि बाप डरा हुआ है, दीवाल खड़ी किये हुए है। बेटा भी भयभीत है, वह भी बचकर निकलता रहता है। कहीं कोई तालमेल नहीं हो पाता। सुरक्षा की जिसने फिक्र की वह ठोस हो जायगा, क्योंकि उसे तरल बनने में बड़ा डर लगता है, 'इनसेक्योरिटी फील' होती है। तभी तो हम प्रेम करने में बड़े डरते हैं और पक्की जांच-पड़ताल कर लेते हैं तब प्रेम करते हैं। यानी जिस आदमी से कोई डर नहीं, उसी से हम प्रेम करते हैं।

इसीलिए तो हमने विवाह ईजाद किये हैं कि पहले विवाह कर लें, पहले सब इन्तजाम कर लें, फिर प्रेम। क्योंकि प्रेम खतरनाक है। प्रेम तरल चीज है, किसी भी व्यक्ति में प्रवेश कर सकता है। राह चलते आदमी से प्रेम करना खतरनाक है, क्योंकि हो सकता है घर आये और सब सामान उठाकर ले जाय। इसलिए पहले पक्का पता लगा लो कि यह आदमी कौन है, क्या है, इसके मां-बाप कहां के हैं, इसका चरित्र कैसा है, इसमें गुण क्या हैं? सब इंतजाम कर लो, सामाजिक सुरक्षा पूरी कर लो, फिर घर में लाओ। हम डरे

हुए लोग पहले सुरक्षा कर लेंगे और जितनी हम सुरक्षा करते हैं उतनी सख्त दीवाल बर्फ की चारों ओर खड़ी हो जाती है और वह सारे व्यक्तित्व को सिकोड़ देती है। हमारा परमात्मा से और कहीं संबंध विच्छेद नहीं हुआ है। हम तरल नहीं हैं, 'लिक्विड' नहीं हैं, सालिड हो गये हैं। बस इतना ही विच्छेद है। हम तरल नहीं हैं, ठोस हो गये हैं, हम पानी नहीं हैं, हम बर्फ हो गये हैं — इतना ही विच्छेद है। हम तरल हो जायं तो विच्छेद विलीन हो जायगा। लेकिन हम तरल तभी होंगे जब हम मौत को देखने और जीने को राजी हो जायं। तब हम स्वीकार कर लेंगे मौत। हम देख लें, पहचान लें कि मौत है; फिर क्या भय रह जायगा! जब मौत ही है, जब लहर को पता ही है कि मिटना ही है, जब लहर को यह पता चल गया कि जानने में ही मिटना छिपा है, जब लहर को यह पता चल गया कि जब मैं बनी थी तभी मिटना शुरू हो गया था — तो बात खत्म हो गयी। बर्फ बनने की क्या जरूरत है, जितनी देर लहर हूं लहर हूं। जितनी देर सागर की हूं सागर हूं। तब सब स्वीकृत है। तब उस स्वीकार से लहर सागर हो जाती है। तब फिर चिन्ता मिट जाती है मिटने की, क्योंकि तब लहर जानती है कि मिटने के पहले भी मैं थी और मिटने के बाद भी मैं हूं। 'मैं' की तरह नहीं, असीम सागर की तरह।

किसी ने लाओत्से से पूछा मरते समय कि आप अपने जीवन के कुछ रहस्य बता दें। लाओत्से ने कहा, पहला रहस्य तो यह है कि मुझे जिन्दगी में कभी कोई हरा नहीं सका। शिष्य बड़े उत्सुक हो गये। उन्होंने कहा, यह तो आपने मुझे कभी बताया नहीं। जीतना तो हम भी चाहते हैं। हमें तरकीब बताइए। लाओत्से ने कहा, तुम भूल कर गये। मैंने कुछ और कहा। मैंने कहा था कि मुझे कोई हरा नहीं सका था और तुम पूछते हो जीतना तो हमें भी है। ये दोनों बातें बिल्कुल उल्टी हैं यद्यपि एक-सी लगती हैं। शब्द की दुनिया में इनका एक ही अर्थ है कि जो नहीं हारा वह जीतता है। लाओत्से ने कहा, तुम गलत समझ गये। मैंने इतना ही कहा था कि मुझे कोई हरा नहीं सका और तुम कहते हो जीतना हमें भी है। तुम भाग जाओ, तुम मेरी बात नहीं समझ सकोगे। शिष्यों ने कहा, फिर भी हमें समझाइए। तरकीब तो हमें बता दें। क्या तरकीब थी कि आप नहीं हारे? लाओत्से ने कहा, मुझे कोई हरा न सका क्योंकि मैं सदा हारा हुआ हूं। हराने का उपाय ही न था। मुझे कोई

हरा नहीं सका, क्योंकि मैंने कभी जीतना ही नहीं चाहा। असल में मेरी लड़ाई ही खड़ी न हो सकी। मुझसे कोई लड़ने भी आया, तो मैं हारा ही हुआ था। उस आदमी को भी हराने में कोई मजा न आया क्योंकि हराने में उसी को मजा आता है जो जीतना चाहता हो। कोई जीतना ही नहीं चाहता, उसको हराने में क्या मजा आ सकता है। असल में किसी दूसरे के अहंकार को मिटाने में मजा आता है क्योंकि उसको मिटाने में उसका अपना अहंकार मजबूत होता है। लेकिन अगर कोई मिटा ही हुआ है, तो उसको मिटाने में क्या मजा आयेगा। हमारे अहंकार को उससे कोई स्फूर्ति नहीं मिली। दूसरे के अहंकार को जितना हम तोड़ पाते हैं उतना हमारा अहंकार मजबूत होता है। दूसरे का टूटा हुआ अहंकार हमारे अहंकार को मजबूती देता है। अगर समझ लें कि किसी को मैं हराने जाऊं, उसे गिराऊं, उससे पहले वह लेट जाय। इसके पहले मैं उसकी छाती पर बैठूं, वह मुझे बुलाकर बिठाल ले। तब क्या हालत हो जायगी ? तब यह हालत हो जायगी कि वहां से भागना पड़ेगा। क्योंकि और किया ही क्या जायगा, जबकि वह आदमी हंसने लगे और कहे कि बैठो आराम से बैठो, कहां भागे जा रहे हो ! और वह आदमी हंसता रहे और उसकी हंसी जिन्दगी भर गूंजती रहे। तो लाओत्से ने कहा, जब मुझे कोई हराने आया, मैं फौरन गिर गया और मैंने कहा, मेरे ऊपर बैठ जाओ, तकलीफ मत करो, परेशान मत होओ, मेहनत मत उठाओ, आओ मेरे ऊपर बैठ जाओ। फिर उसने अपने शिष्यों से कहा — लेकिन तुम दूसरी बात पूछते हो। तुम इसलिए पूछते हो कि ऐसी कोई तरकीब बताओ जिससे हम जीत जायें। अगर तुमने जीतने की सोची तो तुम हारोगे। जीतने की सोचनेवाला हारा ही है। असल में जीतने की सोचने में ही हार शुरू हो गयी है। लाओत्से ने आगे कहा — मेरा कभी कोई अपमान नहीं कर सका। एक शिष्य ने पूछा, इसका भी राज बताइए, क्योंकि अपमान हमें भी बहुत तकलीफ देता है। लाओत्से ने कहा, फिर भूले जा रहे हो। मेरा कोई अपमान न कर सका क्योंकि मैंने मान की कोई आकांक्षा नहीं की। तुम्हारा अपमान होता ही रहेगा, क्योंकि तुम मान की आकांक्षा करोगे। मुझे कभी किसी जगह से निकाला नहीं गया, क्योंकि मैं हमेशा दरवाजे के बाहर, जहां लोग जूते उतारते हैं, वहीं बैठ जाता। मुझे कभी कहीं से नहीं हटाया गया, क्योंकि मैं आखिरी जगह खड़ा था जहां से आगे और हटाने का कोई उपाय न था। मैं बड़े आनन्द में खड़ा रह गया, क्योंकि मैं आखिर में खड़ा रहा, किसी झंझट में नहीं पड़ा। हमें तो न किसी ने हटाया, न किसी ने धक्का

मारा, न किसी ने कहा कि हटो यहां से; क्योंकि वह आखिरी जगह थी। उस जगह पर कोई आना ही नहीं चाहता था। हम अपनी जगह के पहले मालिक थे। हम अपनी जगह के सदा मालिक रहे। जहां हम खड़े थे वहां कभी कोई धक्का देने ही नहीं आया।

जीसस ने भी कहा है, "धन्य हैं वे लोग जो अंत में खड़े होने में समर्थ हैं।" इसका मतलब क्या है? जैसा जीसस कहते हैं कि कोई आदमी हमारे गाल पर एक चांटा मारे, तुम दूसरा उसके सामने रख दो। इसका मतलब यह है कि उसे इतनी तकलीफ ही मत देना कि दूसरा गाल तुम्हारे सामने करने की मेहनत उठानी पड़े, तुम्हीं कर देना। जीसस यह कहते हैं कि वह तुम्हें हराने आयेगा तो तुम हार जाना जल्दी से। वह एक बाजी हराये तो तुम दोनों बाजी हार जाना। और जीसस कहते हैं कि कोई तुम्हारा कोट छीने तो तुम जल्दी से कमीज भी दे देना। क्यों? क्योंकि हो सकता है उसे संकोच हो कमीज छीनने में। तुमसे कोई एक मील बोझा ढोने को कहे, तो तुम मील भर बाद पूछ लेना कि और आगे तो नहीं ले चलना है। इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि जीवन के जो तथ्य हैं असुरक्षा के, हार के, पराजय के वे सब मृत्यु की ही दिशा को ले जाने वाले तथ्य हैं। अन्ततः मृत्यु पूर्ण पराजय है। क्योंकि बड़ी से बड़ी पराजय में भी मैं तो बच ही जाता हूं, हारा हुआ होते हुए भी बच जाता हूं; लेकिन मृत्यु में मैं भी नहीं बचता हूं। मृत्यु सबसे बड़ी पराजय है। इसीलिए तो हम दुश्मन को मार डालना चाहते हैं और कोई कारण नहीं है। क्योंकि मृत्यु अंतिम पराजय है। इसके बाद दुश्मन को जीतने का कोई सवाल नहीं उठता। दुश्मन को मार डालने की इच्छा उसकी अंतिम पराजय कर देने की इच्छा है कि अब इसके बाद उपाय ही नहीं। मृत्यु अंतिम पराजय है और हम सब उससे भाग रहे हैं। यह ध्यान रहे कि जो अपनी मृत्यु से भागेगा वह दूसरे की मृत्यु के लिए चेष्टा करता रहेगा। क्योंकि वह जितना दूसरे को मार सकेगा उतना अपने जीवित होने का अनुभव कर सकेगा। इसलिए दुनिया में जो हिंसा पैदा होती है, जो 'वायलेंस' है, ऐसी हिंसा का कारण बिल्कुल दूसरा है। उस हिंसा का कारण यह नहीं है जैसा लोग समझते हैं। वह पानी छानकर नहीं पीता है, रात खाना खा लेता है इससे हिंसक है। ऐसा भी नहीं है। हिंसा का मौलिक कारण यह है कि आदमी अपनी मृत्यु से भागने के लिए दूसरे को मारना चाहता है। दूसरे को मारने में उसे पता चलता है कि उसे अब कोई नहीं

मार सकेगा। हिटलर या चंगेज या इस तरह के लोग लाखों लोगों को मारकर आश्वस्त होना चाहते हैं कि पक्का हो गया, मुझे कोई न मार सकेगा। मैं तो खुद ही लाखों को मार डालता हूं। दूसरे को मार कर हम अपनी मृत्यु से मुक्त हो रहे हैं यह पक्का कर लेना चाहते हैं; क्योंकि जब हमीं मार सकते हैं तो हमको कौन मार सकेगा? यह बहुत गहरे में मृत्यु से बचाव है। और जो मृत्यु से बचना चाहता है अहिंसक कभी भी नहीं हो सकता। अहिंसक सिर्फ वही हो सकता है जो कहता है मृत्यु स्वीकार है, क्योंकि मृत्यु जीवन का एक तथ्य है। वह है, उससे अस्वीकृति हो ही नहीं सकती। उससे भागेंगे कहां, जायेंगे कहां?

सूरज उगा है, उसी वक्त डूबना शुरू हो गया है। सूर्यास्त उतना ही सत्य है जितना सूर्योदय, सिर्फ दिशाओं का फर्क है। सूर्यास्त में सूर्योदय वहीं पहुंच जाता है जहां सूर्योदय में उठा था। इधर पूरब था, उधर पश्चिम है। इधर जन्म था, उधर मौत है, एक उदय है, एक अस्त है। उदय के साथ ही अस्त छिपा है। उदय में ही अस्त छिपा है। जन्म में ही मृत्यु छिपी है। ऐसा जो जान लेता है फिर अस्वीकार करने का उपाय ही नहीं रह जाता। तब वही स्वीकार करना है। स्वीकार करते ही क्रांति घटित हो जाती है। जिसको मैं कह रहा हूं मृत्यु पर विजय, उसका मतलब है, जैसे ही किसी ने स्वीकार किया वह हंसने लगता है और तब पता चलता है मृत्यु तो है ही नहीं। सिर्फ वह खोल थी ऊपर की जो बन्द थी और भीतर अंधेरा सदा था। सागर सदा था, लहर बनती थी और मिटती थी। सौंदर्य सदा था, फूल बनते थे, बिखरते थे। प्रकाश सदा था, सूरज उगता था, डूबता था। लेकिन जो उगता था, डूबता था वह उगने के पहले भी था और डूबने के बाद भी सदा था। जिस दिन यह दिख जाए, लेकिन यह उसी दिन दिखेगा जिस दिन हम मौत को देखेंगे, दर्शन करेंगे, साक्षात्कार करेंगे; तभी यह दिखायी पड़ सकता है। उसके पहले नहीं दिखायी पड़ सकता है। लेकिन जिसने पूछा है कि मृत्यु के संबंध में हम सोचे ही क्यों, विचार ही क्यों करें, मृत्यु को छोड़ ही क्यों न दें, हम जियें क्यों? मैं उनसे कहता हूं मृत्यु को छोड़कर न कभी कोई जिया है, न जी सकता है और जिसने मृत्यु को छोड़ा उसने जीवन भी छोड़ दिया। यह ऐसा ही है जैसे एक रुपये का सिक्का मेरे हाथ में हो और मैं कहूं कि मैं उल्टा जो सिक्के का हिस्सा है उसकी फिक्र ही क्यों करूं, उसको छोड़ क्यों न दूं? अगर मैं उल्टे सिक्के को छोड़ दूं तो सीधा सिक्का मेरे हाथ से चला जायगा,

क्योंकि वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि सिक्के का एक पहलू मैं बचा लूं और एक फेंक दूं सड़क पर। ऐसा कैसे ही सकता है! दूसरा पहलू उसी के साथ रह जायेगा। और अगर में फेंकूंगा तो दोनों फिक जायेंगे। और एक को मैं बचाऊंगा तो दोनों बच जायेंगे। असल में वे दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं। जन्म और मृत्यु एक ही जीवन के दो पहलू हैं। और जिस दिन यह दिखायी पड़ जाता है उस दिन मृत्यु का दंश चला जाता है। तब हम जानते हैं कि जन्म भी और मृत्यु भी दोनों एक ही आनन्द हैं।

सुबह उठना एक आनन्द है लेकिन सांझ सो जाना आनन्द नहीं है। किसने कहा? अगर कुछ पागल दुनिया में पैदा हो जायं और लोगों को समझायें कि सोना मत तो फिर उनका जगना भी बन्द हो जायगा, क्योंकि जो नहीं सोयेगा वह जाग भी नहीं पायेगा। फिर जीवन वहीं बन्द हो जायगा। कोई सोने से डरने लगे और कहे कि देखो, सुबह जागने में इतना आनन्द आता था, सोने में सब खराब हो जायगा। लेकिन हम जानते हैं — सोना जागने का ही दूसरा हिस्सा है। जो ठीक से सोयेगा, वह ठीक से जागेगा। जो ठीक से जागेगा, वह ठीक से सोयेगा। जो ठीक से जियेगा, वह ठीक से मरेगा। जो ठीक से मरेगा, वह ठीक से जीवन के आगे के कदम उठायेगा। जो ठीक से मरेगा नहीं, ठीक से जियेगा भी नहीं। जो ठीक से जियेगा नहीं वह ठीक से मरेगा भी नहीं। सब अस्तव्यस्त हो जायगा, सब विकृत और कुरूप हो जायगा और इस सारी विकृति और कुरूपता में मौत का भय काम कर रहा है।

एक वृद्धा महिला को उसका बेटा मेरे पास लेकर आया और उसने कहा, मेरी मां को सोने का भय पकड़ गया है। मैंने कहा, क्या हो गया? उसने कहा, इधर वह कुछ दिनों से बीमार है और उसे ऐसा लगता है कि मैं कहीं सोऊं और सोते में ही मर जाऊं! तो वह सोने से डरने लगी है। वह कहती है मैं सोऊं और उठूं ही न। इसलिए रात भर जागने की कोशिश में लगी रहती है। लड़के ने आगे कहा, हम बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं। उसकी बीमारी ठीक होती नहीं क्योंकि रात भर जागती है। वह कहती है, मुझे डर लगता है। मैं सो गयी और मौत आ गयी फिर तो मैं गयी! उसके लड़के ने कहा कि आप उसे सोने के भय से बचा दें, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। उसकी बीमारी ठीक ही नहीं होती, क्योंकि जब वह सोयेगी नहीं, तो उसकी बीमारी कैसे ठीक होगी!

सोना एक तरह से रोज मृत्यु है। दिन भर जीवन है, रात भर मृत्यु है।

वह टुकड़े-टुकड़े की मृत्यु है। रोज थोड़ा-थोड़ा मर लेते हैं। भीतर डूबते हैं सब, फिर ताजे होकर लौट आते हैं। फिर सत्तर और अस्सी साल में पूरा शरीर थक जाता है। फिर पूरी मृत्यु आ जाती है। फिर यह शरीर पूरा बदल जाता है। लेकिन उससे हम बहुत डरे हुए हैं। मृत्यु गहरी निद्रा ही है। क्या आपने कभी ख्याल किया है--शरीर सुबह भी रोज बदल जाता है। थोड़ा बदलता है इसलिए आपको ख्याल में नहीं आता। जब आप सांझ थके-मांदे सोते हैं तो शरीर और हालत में होता है, और सुबह उठते हैं तो और हालत में होता है। सुबह शरीर ताजा हो गया होता है, नया हो गया होता है। फिर शक्ति आ गयी होती है, फिर काम की दुनिया शुरू हो जाती है। आप अब फिर गीत गा सकते हैं। सांझ आप गीत नहीं गा सकते थे क्योंकि थक गये थे, टूट गये थे। लेकिन कभी आपने ख्याल नहीं किया। बल्कि खुश होते हैं क्योंकि अंग ही बदलता है। मृत्यु पूरे शरीर को बदल देती है। पूरा शरीर व्यर्थ हो गया है, अब दूसरे शरीर को देने की जरूरत आ जाती है। लेकिन मृत्यु से हम डरे हुए हैं और उस डर के कारण जीवन पूरा का पूरा पंगु हो गया है। पूरे क्षण भय हमें पकड़े हुए है। जो मरने से डरता है वह जी नहीं सकता है। ये दोनों बातें एक साथ संभव नहीं हैं। जो मरने के लिए बिल्कुल सहज तैयार है, वही जीने के लिए भी तैयार है। दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं। इसलिए मैं कहता हूं मृत्यु को देखें। विचार करने को नहीं कहता हूं। कभी विचार आप करेंगे, तो धोखे में पड़ेंगे। क्या करेगा विचार?

एक बहुत दुखी और पीड़ित आदमी है तो सोच सकता है कि मृत्यु में सब समाप्त हो जाता है। उसे यह विचार प्रीतिकर लगेगा। इसलिए नहीं कि यह सही है। ध्यान रहे, जो आपको प्रीतिकर लगता है इसलिए सही है ऐसा कभी मत मान लेना, क्योंकि प्रीतिकर लगना सत्य पर निर्भर नहीं है, आपकी सुविधा पर निर्भर होता है। एक आदमी दुखी है, पीड़ित है, बीमार है तो वह सोचता है कि मृत्यु में पूरा ही मर जाना चाहिए, कुछ न बचना चाहिए; क्योंकि कुछ भी बचेगा तो मैं ही बचूंगा--दुखी, बीमार।

एक मित्र ने पूछा है कि कुछ लोग आत्महत्या कर लेते हैं, उनके बाबत आप क्या कहते हैं ? क्या वे लोग मृत्यु से नहीं डरते ?

मृत्यु से तो वे भी डरते हैं, लेकिन वे जीवन से, मृत्यु से भी ज्यादा डर गये होते हैं। जीवन उनको मृत्यु से ज्यादा दुखद मालूम पडने लगता है और तब वे जीवन को समाप्त ही कर लेना चाहते हैं। उस समाप्त करने में ऐसा नहीं है कि

उनको जीवन का आनंद है। जीवन मृत्यु से भी बदतर मालूम पड़ने लगा, इसलिए मृत्यु को ही चुन लेना उचित समझा । जो आदमी जीवन से पीड़ित है, परेशान है वह इस सिद्धांत को मान लेगा कि आत्मा बिल्कुल मर जाती है, कुछ भी नहीं बचता । तो वह अपना कुछ भी हिस्सा बचाना नहीं चाहता, क्योंकि बचायेगा तो दुखी रहेगा । जो आदमी मृत्यु से भयभीत है और अपने को बचाना चाहता है वह यह सिद्धांत स्वीकार कर लेता है कि आत्मा अमर है। सब 'कन्वीनिएसेस' सुविधाएं हैं हमारी। इसमें हमें जो सुविधापूर्ण लगता है उसी के अनुसार जिन्दगी में कई दफे सिद्धांत बदल जाते हैं। जवानी में आदमी नास्तिक होता है, बुढ़ापे में आस्तिक हो जाता है। असल में सच तो यह है कि सिर में भी दर्द हो तो सिद्धांत बदल जाते हैं । जब सिर ठीक रहता है, सिद्धांत दूसरे रहते हैं । शरीर के भीतर क्या चल रहा है उसका असर होता है । जब पेट खराब होता है तो नास्तिक होने की तबियत होती है, जब पेट बिल्कुल ठीक होता है तो आस्तिक होने की तबियत होती है। जब सिर में दर्द हो तो आदमी कैसे माने कि ईश्वर है। ईश्वर है तो सिर दर्द का मेल कहां बैठता है—ईश्वर के होने और सर दर्द होने में ! इसपर प्रयोग किये जा सकते हैं। पचास आदमी बीमार हों और पचास आदमी पूरे स्वस्थ हों, पचास का जीवन आनन्द पूर्ण हो और पचास आदमी दुखी हों। तो आप देखोगे कि उन पचास दुखी आदमियों में नास्तिकता बढ़ती चली जायेगी और उन पचास स्वस्थ आदमियों में आस्तिकता बढ़ती चली जायेगी। ऐसा नहीं है कि आस्तिकता की वजह से आनंद मिलता है। दुखी चित्त नास्तिक हो जाता है। इसलिए ध्यान रहे, अगर नास्तिकता बढ़ती हो दुनिया में, तो समझ लेना चाहिए कि दुख बढ़ रहा होगा । जब आस्तिकता बढ़ती हो, तो समझ लेना चाहिए कि सुख बढ़ रहा होगा। इसलिए मैं कहता हूं कि संभावना है दुनिया के पचास साल में आस्तिक हो जाने की जबकि आपकी मान्यता है पचास साल में और नास्तिक हो जाने की। सिद्धांतों से कुछ नहीं होता है।

रूस में मार्क्स की किताब चलती है और आपकी महावीर की किताब चलती है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महावीर और मार्क्स की किताबें दो कौड़ी का फर्क नहीं ला सकतीं । रूस में अगर सुख बढ़ता चला गया, तो पचास साल में आस्तिकता वापस लौट आयेगी । मंदिरों में घंटियां बजने लगेंगी। वह सुखी चित्त बजाता है। दिये जलने लगेंगे। वह सुखी चित्त जलाता है। प्रार्थनाएं होने लगेंगी। सुखी चित्त प्रार्थना करता है। भगवान को धन्यवाद दिया जाने लगेगा। सुखी चित्त किसी को धन्यवाद देना चाहता है। अगर कोई कारण दिखायी नहीं पड़ता, तब वह अज्ञात

को धन्यवाद देता है । दुखी चित्त क्रोध प्रकट करना चाहता है । अगर कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता, तो किस पर क्रोध प्रकट करे? तो वह अज्ञात के प्रति नाराजगी से भर जाता है। वह कहता है वह जो अज्ञात है, 'अननोन' है, परमात्मा उसी की वजह से सब गड़बड़ है। या तो वह है ही नहीं या तो वह पागल हो गया है। **मैं आपसे यह कह रहा हूं कि हमारी आस्तिकता, हमारी नास्तिकता, हमारे सिद्धांत सब हमारी स्थितियों की सुविधाओं के फल हैं । जो व्यक्ति मृत्यु से भागेगा वह कोई सिद्धांत पकड़ लेगा। जो मरना चाहेगा वह कोई सिद्धांत पकड़ लेगा । लेकिन इनमें से कोई भी मृत्यु को जानने के लिए उत्सुक और आतुर नहीं है ।** सुविधा और सत्य में बड़ा फर्क है। अपनी सुविधा का बहुत विचार मत करना क्योंकि विचार सदा सुविधा का ही होता है। दर्शन सत्य का होता है, विचार सुविधा का होता है। अभी एक आदमी कम्युनिस्ट है और भारी शोर गुल मचाता है कि क्रांति होनी चाहिए और गरीब को संपत्ति मिलनी चाहिए, संपत्ति का विभाजन होना चाहिए। जरा कोशिश करें, उसको एक कार दे दें, एक बड़ा बंगला दे दें, एक अच्छी पत्नी दे दें, तो पन्द्रह दिन बाद देखेंगे कि वह आदमी एकदम बदल गया है । वह कहता है कम्युनिजम वगैरह सब बेकार हैं। क्या हो गया है इस आदमी को? सुविधा जो थी वही विचार था । इसमें सुविधा थी उस दिन कि संपत्ति बंट जाय, अब इसमें असुविधा है कि संपत्ति बंट जाय। क्योंकि अब संपत्ति बंटेगी तो यह कार भी बंटेगी, बंगला भी बंटेगा। जिसे सुन्दर स्त्री नहीं मिली, वह कह सकता है कि स्त्रियों का भी कम्युनिजम चाहिए, सुन्दर स्त्रियों पर कुछ ही लोग कब्जा क्यों करे, सबकी होनी चाहिए। ऐसी प्रस्तावना देने वाले लोग हैं पृथ्वी पर जो कहते हैं, आज संपत्ति,कल स्त्री। इसमें भूल भी नहीं है, क्योंकि स्त्री को संपत्ति आप मानते ही रहे हैं । अगर आज हम यह कहते हैं कि एक आदमी बड़े मकान में रहे, एक झोंपड़े में रहे, यह गलत है, तो कल इसमें कठिनाई क्या है कि हम यह कहें कि एक आदमी को सुंदर स्त्री मिल जाय और एक आदमी को सुंदर स्त्री न मिले, यह कैसे संभव है ! विभाजन बराबर होना चाहिए। आज नहीं कल, ऐसे सवाल उठने वाले हैं। जिस दिन संपत्ति वितरित हो जायगी उसी दिन स्त्री को बांटने का सवाल खड़ा हो जाने वाला है। मगर जिसके पास सुंदर स्त्री है, वह यह कह सकता है कि ऐसा कैसे हो सकता है? यह क्या बेहूदी बात है, बिल्कुल गलत बात है !

सुविधा हमारा विचार बन जाती है। हम सब सुविधा को विचार बनाये

हुए हैं। हमारे सब विचार हमारी सुविधा के पोषक होते हैं या हमारी असुविधा को मिटाने वाले होते हैं। **दर्शन बात और है। दर्शन का सुविधा से कोई संबंध नहीं है।** इसलिए ध्यान एक तपश्चर्या है। तपश्चर्या का मतलब है — जहां सुविधा का ध्यान नहीं रखना पड़ता है, जहां जो है उसे ही जानना पड़ता है, जैसा है उसे ही जानना पड़ता है। तो मृत्यु के तथ्य का दर्शन करना है, विचार नहीं। विचार तो सब अपनी सुविधा से कर लेते हैं। जो आपको लगेगा सुविधापूर्ण वह कर लेंगे। सवाल है मृत्यु क्या है—उसे जानना है, जैसी है वह। मेरी सुविधा-असुविधा कोई फर्क नहीं लाती। जैसी है वही जानना पड़ेगा। उसे जानते ही व्यक्ति के जीवन में क्रांति घटित हो जाती है। क्योंकि मृत्यु नहीं है। जानते ही पता चलता है कि नहीं है। जबतक नहीं जाना तभी तक पता चलता है कि है। **मृत्यु अज्ञान का अनुभव है, अमरत्व ज्ञान का अनुभव है।** ● ● ●

कृष्ण

के अद्भुत व्यक्तित्व, जीवन-दृष्टि, जीवन-दर्शन आदि पर तात्विक विवेचन के लिए

आचार्यश्री रजनीश के सान्निध्य में

२५ सितंबर से ५ अक्तूबर

नैसर्गिक सुषमा की क्रीड़ास्थली कुल्लू–मनाली में

अध्यात्म–शिविर का आयोजन

●

विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं. ५३,

डॉ. डी. एन. रोड, बम्बई–१... फोन : २६४५३०

आचार्यश्री रजनीश के आगामी देश-व्यापी कार्यक्रम :

दिनांक	स्थान	कार्यक्रम	संयोजक
१ सितंबर से ५ सितंबर	**बम्बई** (षण्मुखानंद हाल, किंग्ज सर्किल)	पंच महाव्रत पर व्याख्यान माला	जीवन जागृति केंद्र, ५३ एम्पायर बिल्डिंग, डॉ. डी. एन. रोड, **बम्बई** १. फोन : २६४५३०
१० सितंबर से १३ सितंबर	**बड़ोदा** (विश्व विद्यालय)	सत्संग	श्री चंद्रकांत पटेल, 'आसोपालव,' बैंक आफ इंडिया के सामने, रायपुरा, **बड़ोदा**
२० सितंबर	**इंदौर**	प्रवचन	श्री राजमल जैन, १२ जवाहर रोड, **इंदौर**
२५ सितंबर से ५ अक्तूबर	**कुल्लू–मनाली**	प्रवचन	सम्पर्क : जीवन जागृति केंद्र, **बम्बई**
१० अक्तूबर से १३ अक्तूबर	**पूना**	—	श्री माणिक बाफना, जीवन जागृति केंद्र, स्पार्टन लग्झरी, सी-१, २४७–१४ बी, यरोडा, **पूना**-६ फोन : २४११४
१७ अक्तूबर	**दिल्ली**	—	लाला सुंदरलाल, ४१ यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर-नगर, **दिल्ली**-६. फोन : २२७६५५
१८ अक्तूबर से २१ अक्तूबर	**जालंधर**	प्रवचन	श्री ओम्प्रकाश अग्रवाल, एन. के. १७५, चरणजीतपुरा, **जालंधर**

दिनांक :	स्थान :	कार्यक्रम :	संयोजक :
२२ अक्तूबर	**दिल्ली**	—	लाला सुंदरलाल, **दिल्ली**
२८ अक्तूबर से ३१ अक्तूबर	**गाडरवारा**	सत्संग	जीवन जागृति केंद्र, **गाडरवारा** (म. प्र.)
३ नवंबर से ८ नवंबर	**अमृतसर**	सत्संग	श्री चमनलाल, जीवन जागृति केंद्र, २५ केनेडी एवेन्यू, **अमृतसर,**
९ नवंबर से १४ नवंबर	**बम्बई** (क्रास मैदान)	प्रवचन	जीवन जागृति केंद्र, **बम्बई**
१५ नवंबर से २१ नवंबर	**कलकत्ता और जमशेदपुर**	—	संपर्क : श्री हीरालाल मेहता, ७० नेताजी सुभाष रोड, **कलकत्ता–१**
१ और २ दिसंबर	**आनन्द** (वल्लभ विद्यालय)	—	श्री जयंतीभाई, जीवन जागृति केंद्र, डायचेम कार्पोरेशन, खाड़िया चार रास्ता, **अहमदाबाद–१** . फोन : २४०८३
१७ दिसंबर से २२ दिसंबर	**गोंडल**, जूनागढ़	—	जयवंती बहन शुक्ला, जीवन जागृति केंद्र, **जूनागढ़**

मुद्रक प्रकाशक : श्री ईश्वरलाल एन. शाह, जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं. ५३, डा. डी. एन. रोड, फोर्ट, **बम्बई–१**

मुद्रणस्थान : स्टेट्स प्रीण्टिंग प्रेस, **बम्बई–१**

In this PDF, the back-cover is missing.